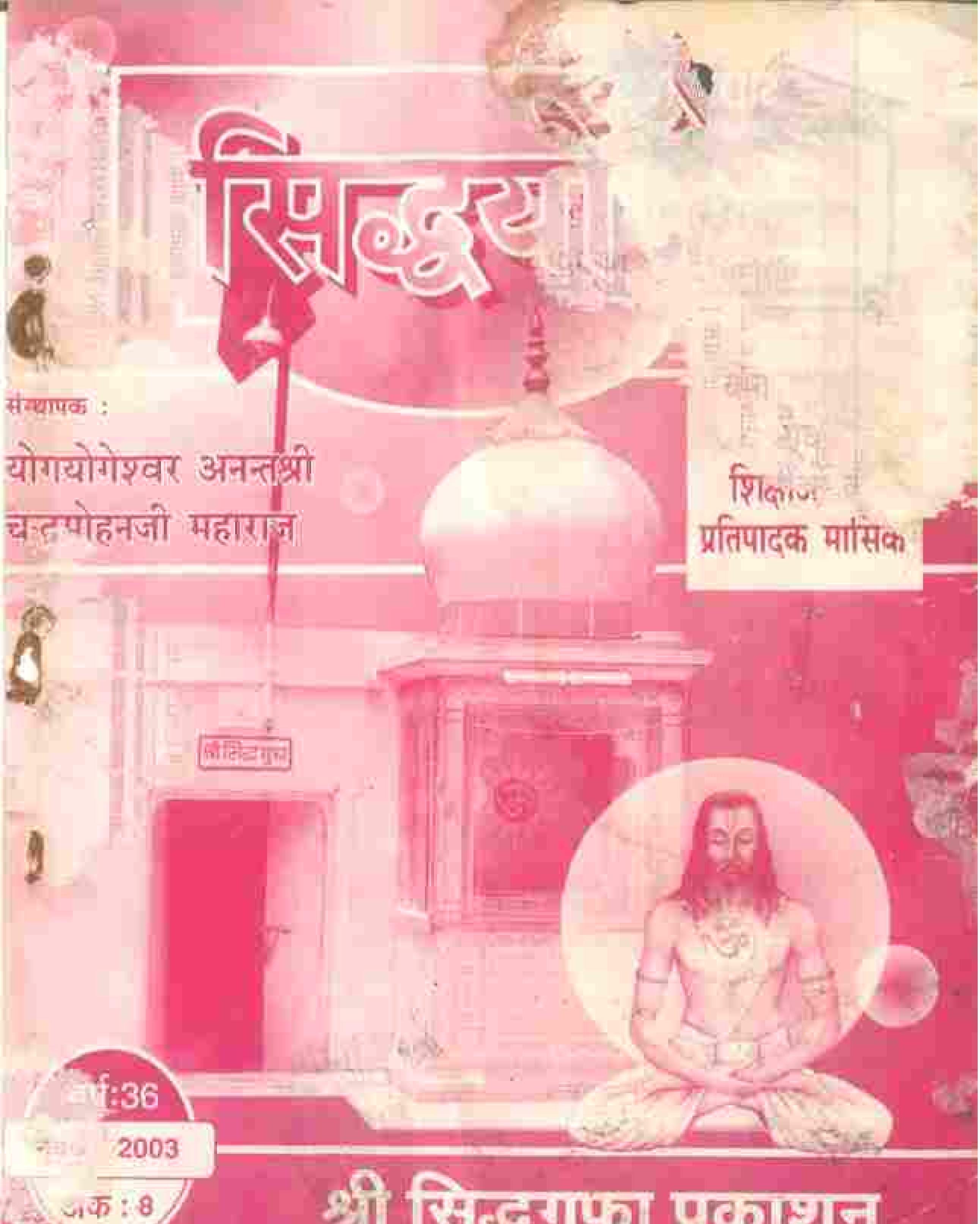

सिद्ध

संस्थापक :

योगयोगेश्वर अनन्तश्री

मोहनजी महाराज

प्रतिपादक मासिक

वर्ष:36

2003

अंक : 8

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन

सैंवाई-283 202 (आगरा) उ.प्र.

अमृतकण

यस्मान्नो द्विजते लोको लोकान्नो द्विजते च यः।
हर्षामर्ष भयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः।।

(श्रीमद्भगवद् गीता)

जिस व्यक्ति से किसी भी जीव को उद्वेग नहीं होता और जो स्वयं भी किसी जीव से उद्वेग को प्राप्त नही होता तथा जो हर्ष, अमर्ष (ईर्ष्याजन्य संताप) भय और उद्वेग रहित (शुद्ध मन वाला) है वह भक्त मुझे प्रिय है।

❊ ❊ ❊

अभिद्‌र्गात्राणि शुद्धयन्ति मनः सत्येन शुद्धयति।
विद्या तपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्धयति।।

(मनुस्मृति)

शरीर की शुद्धि जल से होती है, मन सत्य से शुद्ध होता है, आत्मा की शुद्धि विद्या और तप से होती है तथा बुद्धि ज्ञान से शुद्ध होती है।

❊ ❊ ❊

यावत्स्वस्थो ह्ययं देहो यावन्मृत्युश्च दूरतः।
ता वदात्महितं कुर्यात् प्राणान्ते किं करिष्यति।।

(चाणक्य सूत्र)

जब तक शरीर निरोग है और मृत्यु दूर है तभी तक अपने कल्याण का उपाय कर लेना चाहिये। क्योंकि मृत्यु हो जाने पर कोई कुछ नहीं कर सकता।

❊ ❊ ❊

यस्तु विज्ञानवान्भवन्ति समनस्कः सदा शुचिः।
स तु तत्पद् माप्नोति यस्माद् भूयो न जायते।।

(कठोपनिषद्)

जो विज्ञान का ज्ञाता है जिसकी आत्मा, मन के साथ नहीं बल्कि मन आत्मा के साथ लगा है, जिसका मन शुद्ध और पवित्र विचारों वाला है ऐसा जीवात्मा ही परम परमात्म पद को उपलब्ध हो सकता है, जिसके बाद फिर उस जीवात्मा का जन्म नही होता।

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, संवाई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 36
अंक 7

अक्टूबर
2003

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्,
मर्त्यो मृत्योर्मुख विवरतो, मुक्ति माप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विषदान् योगशास्त्रोपदेशान्,
कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

ज्योगेव दृशेम सूर्यम्

ॐ स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु
स्वस्ति गोभ्यो जगते पुरुषेभ्यः।
विश्वं सुभूतं सुविदत्रं नो अस्तु
ज्योगेव दृशेम सूर्यम्।।

अथर्ववेद १/३१/४

अर्थात्

हमारे माता, पिता, गौओं, जगत के अन्य प्राणी और पुरुषों का कल्याण हो। हमारे लिए सब वस्तुएं कल्याणकारक और सुगमता से प्राप्त होने योग्य हों। हम दीर्घकाल तक सर्वप्रकाशक सूर्य भगवान का दर्शन करते रहें।

अमृतकण

सदाचार

धर्मोऽस्य मूलान्यएवः प्रकाण्डो
वित्तानि शाखाच्छादनानि कामाः।
यशांसि पुष्पाणि फलं च पुण्य–
मसौ सदाचारतरुर्महीयान्।।(वामन पुराण)

सदाचारी रुपी महान् वृक्ष का मूल धर्म है। काण्ड (तना) आयु है, शाखा धन है, पत्र कामना है। और फल पुण्य है। इस प्रकार यह कल्पतरु महामहीयान है।

* * *

अनाचारस्तु मालिन्यमत्याचारस्तु मूर्खता।
विचाराचारसंयोगः सदाचारस्य लक्षणम्।। (बोधसार)

अनाचार से मनुष्य के चित्त में मलिनता होती है और आवश्यकता से अधिक आचार करना मूर्खता (या दम्भ) कहा गया है। अतः विचारपूर्वक जो आचार किया जाता है, वही सदाचार कहलाता है।

* * *

सर्वलक्षणहीनोऽपि यः सदाचारच्चानरः।
श्रद्दधानोऽनसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति।।
(महाभारत अनुशासन पर्व १०४/७४)

समस्त लक्षणों से हीन होता हुआ भी जो सदाचारी और श्रद्धालु है और जो दूसरों पर दोषारोपण नहीं करता, वह सौ वर्षों तक जीवित रहता है।

* * *

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः।
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्।।
(कठोपनिषद् १/२/२४)

प्राणी जब तक दुराचार से निवृत नहीं होता, इन्द्रिय दमन नहीं करता और उसका चित्त शान्त नहीं होता, तब तक वह केवल ब्रह्मज्ञान से भी परमात्मा की प्राप्ति नहीं कर सकता।

□ विशेष-लेख

तप व स्वाध्याय से आवरण क्षय व सिद्धानुकम्पा

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज)

देखो ! योग दो प्रकार से चलता है **'यत्र प्राणोलीयते तत्र मनो लीयते, यत्र मनोलीयते तत्र प्राणोऽपि लीयते'**। जो लोग गुरुदेव के नियन्त्रण में रहकर विधिपूर्वक प्राणायामादि करते हैं तो इसका अन्तिम परिणाम निकलता है–**ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्**। प्रकाशावरण क्षय से योगी को दूर दर्शन, दूर श्रवण, आदि स्वतः होने लगते हैं। हठयोग एक प्रकार से साधन योग है। योग प्राप्ति का दूसरा उपाय है–सिद्धयोग ! सिद्धयोग का अर्थ है– शक्तिपात योग। सिद्धयोग का अधिकारी भी बड़ी मुश्किल से मिलता है। बहुत से लोगों के मन में एक भ्रांति रहती है वे समझते है कि योग साधन है वेदान्त साध्य है। ऋषिकेश में हमारे एक पण्डित सुदर्शनाचार्य थे। व्याकरण के अच्छे विद्वान थे। हमने उनसे कहा–आप योग पर कुछ लेख लिखिए सिद्ध योग (पत्रिका) में उसे प्रकाशित किया जायेगा। उन्होंने कहा–हाँ जी ! जितना योग है उतना ही तो लिखेंगे। मैंने पूछा योग कितना है ? वे कहने लगे–योग साधन है वेदान्त साध्य है। मैंने कहा–यदि मैं इस प्रकार कह दूँ वेदान्त साधन है योग साध्य है तो इसमें क्या हानि है ? मैंने तुम्हें बताया था **योगः समाधिः। समाधिः वै योगः। समाधि समतावस्था जीवात्मपरमात्मनः**। वेदान्त का लक्ष्य भी यही है। अयमात्मा ब्रह्म, अहं ब्रह्मास्मि कहने मात्र से कोई ब्रह्म नहीं हो जाता। जब तक संयतेन्द्रिय होकर लम्बे समय तक साधना व संयम नहीं कर लेता तब तक उस तत्त्व का ज्ञान नहीं हो पाता। भगवान ने कहा है–

एकं साख्यं च योग च यः पश्यति सः पश्यति।

जो सांख्य और योग को एक जानता है वही ठीक जानता है, किन्तु खास बात और है–

संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः।
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति।।

बिना योग के संन्यास बहुत कठिन है किन्तु योग युक्त हुआ मुनि शीघ्र ही ब्रह्म को पा जाया करता है। हम सर्दी–गर्मी, भूख–प्यास सहन करते हुए साधना कर रहे हैं। यह तप है। तप का फल पतञ्जली जी महाराज ने बताया है 'कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धि क्षयात्तपसः'।

अर्थात् तप के द्वारा अशुद्धि के क्षय हो जाने पर योगी को कायिक और ऐन्द्रिय सिद्धि मिल जाती है। तप करने से अन्तःकरण शुद्ध होता है। कायिक शुद्धि आ जाने से शरीर वज्र की तरह दृढ़ हो जाता है। ऐन्द्रिय सिद्धि के आ जाने पर दूरदर्शन, दूर श्रवण आदि की योग्यता योगी को हो जाती है। तुमने इस प्रकार की कहानियाँ सुनी होंगी। एक योगिराज जंगल में रहा करते थे उनकी गुफा के दरवाजे पर सैकड़ों मन का पत्थर रखा रहता था। जब वह बाहर निकलते

थे, उस पत्थर को हटा देते थे और अन्दर आने पर पत्थर को फिर लगा लेते थे। हमारे ऋषिकेश आश्रम में जब कुआँ बन रहा था तो एक बहुत बड़ा पत्थर बीच में आ गया जो पानी के रास्ते में रुकावट थी। उस शिला को तोड़ने का बहुत प्रयास किया किन्तु नहीं टूटा। आठ–दस मजदूर उसको निकालने में लगे रहे किन्तु न तोड़ पाये न निकाल पाये। अन्त में श्री प्रभुजी ने उस पत्थर को देखा और कहा–अरे ! तुम लोग ताकत तो लगाते नहीं हो निकले तो निकले कैसे ? हमारी गुरु बहिन द्रोपदी देवी बतलाती थी कि श्री प्रभु जी ने उठाकर उस भारी शिला को बाहर निकाल दिया। सबको बहुत आश्चर्य हुआ कि प्रभुजी ने इस भारी पत्थर को कैसे बाहर निकाल दिया ? मैं तुम्हें बतला रहा था कि ऐन्द्रिय सिद्धि से दूर श्रवण, दूर दर्शन की योग्यता आती है। एक लड़का आगरे के कॉलेज में पढ़ता था उसका नाम ओमप्रकाश था। भगवान कृष्ण का प्रेम उसमें जाग गया और वह सब कुछ छोड़कर श्री वृन्दावन चला गया। वृन्दावन जाकर उसने अनशन व्रत रख लिया। कुछ भी खाता–पीता नहीं था। वह अड़सठ दिन तक जीवित रहा। राधा रमण के गोस्वामियों ने उसकी जीवनी लिखी है। वह पुस्तक वृन्दावन में मिलती है। कायस्थ परिवार का था वह लड़का। इलाहाबाद में वी.पी. जौहरी हमारे बच्चे हैं वे उस लड़के को अपना रिश्तेदार बताते थे। जिस समय वह भूखा प्यासा तप कर रहा था नारायण स्वामी उन्हें समझाने के लिये गये। वह लड़का माना नहीं, व्रत नहीं तोड़ा। वह कहने लगा–यदि भगवान आज्ञा देंगे तभी व्रत को छोड़ूँगा, नहीं तो, नहीं तोड़ूँगा। उसने अपने मुख से बताया कि मुझे सिद्ध पुरुषों के दर्शन हुये। उसकी जीवनी में इस प्रकार का लेख है–संसार वाले किसी को बख्शते नहीं हैं। कोई भूखा प्यासा हो, तपस्वी हो, लोग अपनी मनोकामना की पूर्ति के लिये पहुँच जाया करते हैं। उसके पास भी लोग आने जाने लगे। वह यमुना जी का जल उठाकर दे देता था। कह देता था–जाओ, तुम्हारा काम हो जायेगा। सैकड़ों के काम हुये। उसने गोलोकधाम का वर्णन किया। वह बताता था कि दूसरे लोकों के भी उसे दर्शन हो रहे हैं। उसमें आवाज आ रही है, अमुक शब्द सुनाई दे रहा है। इसका नाम है **'कायेन्द्रियसिद्धि'**। एक साधु को हमने योग साधनापूर्वक तपस्या कराई। वह बहुत कम खाता–पीता था। वह हमको बताता था कि कुछ दिन के बाद बैठे–बैठे ही दूर–दूर तक देखने लगते थे, दूर–दूर की सुनने लगते थे। आँखों के सामने लहर सी आती थी। उससे सब देख लेते थे। **'नातपस्विनो योगः सिद्धयति'** जो तपस्वी नहीं है उसे योग सिद्ध नहीं हो सकता। प्राणायाम से प्रकाश के आवरण का क्षय होता है। हमारी आँख को दूर तक देखने में यह दीवार व्यवधान है जब आँखों की रोशनी ज्यादा मिलेगी तो हमारी आँखों का प्रकाश उस दीवार को पार कर जायेगा। हम दीवार से आगे का भी देख लेंगे। हमारा एक साधु बनारस में रहता है। श्री प्रभुजी से ऋषिकेश में योग दीक्षा ली थी। बाद में संन्यासी होकर बनारस रहने लगा। उसे दीवार के पीछे की वस्तुयें भी साफ दिखाई देती थीं। यह प्रकाशावरण क्षय होने के कारण है। प्राणायाम के फल के बारे में मनु महाराज का लेख है–

दह्यन्ते ध्मायमानानाम् धातूनां यथामलाः

जब इन्द्रियों के मल जल जाते हैं तो इनकी ताकत बहुत बढ़ जाती है। प्रकाश के आवरण का क्षय हो जाता है। संसार सिंह नाम का हमारा एक बच्चा था। वह प्राणायाम किया करता था। प्राणायाम से उसकी बहुत ऊँची स्थिति बन गयी थी। उसके गाँव के लोग उसकी बहुत सी दिव्य घटनायें सुनाया करते हैं। एक बार जम्मू में बैठे-बैठे उसके सामने से अमृतसर का एक डाक्टर गुजर रहा था। उसे देखकर उसके मन में आया-कौन है ? कहाँ से आया है ? योग में एक भूमिका आती है, जिसके अन्दर योग स्थित होकर जिस वस्तु का विचार करता है उसका उत्तर उसको अन्दर से ही मिल जाता है। मैंने तुम्हें बताया था कि प्रज्ञालोक हो जाने के बाद योगी **'यथावत् वस्तु जानाति'**। योगी वस्तु की यथार्थ स्थिति को जान जाया करता है। ऐसी स्थिति स्फुट प्रज्ञालोक वाले को हो जाया करती है। उस डॉक्टर के बारे में सारी बातें उसके सामने आई। उसी समय उस डॉक्टर के दो लड़के छत पर खेल रहे थे। खेलते-खेलते वह दोनों छत से नीचे गिर गये। संसार सिंह की दृष्टि उन बच्चों पर पड़ी। संसार सिंह साधारण वेष में रहता था किन्तु तेज छुपता नहीं है। उसने डाक्टर को बुलाकर हाल पूछा और फिर कहा-तुम्हारे दो लड़के खेलते-खेलते छत से गिर गये हैं, किन्तु घबराने की बात नहीं है उन पर प्रभु की दृष्टि पड़ गयी है। यह क्या था ? यह था प्राणायाम का फल एवं प्रकाशावरण क्षय। अस्तु। कहने का अभिप्राय यह है कि तप से इस प्रकार से कायिक व ऐन्द्रिय सिद्धि मिलती है। हमारे रीति-रिवाज में लोग एकादशी, पूर्णमासी का व्रत रखा करते हैं यह भी तप है इससे पुण्य बढ़ता है। उनकी भजन की वृत्ति अपने आप बन जाती है। और उनका अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है। रजोगुण, तमोगुण दब जाता है। **'सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन प्रकाशोपजायते'** सतोगुण बढ़ने पर रोम-रोम से प्रकाश निकलता है। प्रेम भी सतोगुण का परिणाम है। एक बार हम श्री वृन्दावन में थे। वहाँ मोती झील पर हमें एक नवयुवक मिला। उसकी आँखें ऊपर को चढ़ी हुई थीं। चेहरा बड़ा तेजस्वी था। मैं उसे कई दिन से उसी स्थान पर देख रहा था। एक दिन यथा-तथा मैंने उसको जगा दिया और उससे पूछा-तुम्हारी यह स्थिति किस प्रकार से बनी है ? पहले तो उसने मुझ से कहा- महाराज ! आपने मुझे क्यों जगा दिया ? मुझे वैसे ही पड़े रहने देना चाहिए था। मैंने पूछा-इस समय तुम्हारी स्थिति कैसी है ? उसने कहा- बस ! श्यामसुन्दर ही श्यामसुन्दर दीखते हैं और कुछ नहीं दिखता। मैंने उससे पूछा-ये मकान दिखते हैं ? वह कहने लगा- नही ! ये कदम्ब के वृक्ष दिखाई दे रहे हैं ? नहीं ! मुझे नहीं दिखाई दे रहे हैं। मैंने पूछा-मैं दिखता हूँ ? वह कहने लगा- हाँ, आप बोल रहे हैं थोड़ा-थोड़ा दिखाई दे रहे हैं। मैंने पूछा-तुम्हें यह स्थिति कैसे प्राप्त हुई ? उसने कहा- मैं बनियों का लड़का हूँ। लाहौर में रहता था। वहाँ मैंने एक बार रासलीला देखी। मैंने उस रासलीला में बनने वाला ठाकुर (कृष्ण) का फोटो लेना चाहा। उन्होंने इसकी आज्ञा नहीं दी। मैं बड़ा निराश हुआ। मैंने एक शिवालय में जाकर भूखा प्यासा रहकर पञ्चाक्षरी का जाप शुरू कर दिया। तीन दिन बाद आकाशवाणी हुई

तुम पर कृपा हो गई है। अब तुम वृन्दावन चले जाओ। इसके बाद रासलीला वालों ने मुझे ढूँढकर ठाकुर जी की फोटो दे दी। मुझे उस लड़के ने वह फोटो दिखाई थी। उसे दिव्य स्थिति प्राप्त हो गई थी। अब उसकी वही स्थिति थी—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वंच मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यमि स च मे न प्रणश्यति।।

मेरे कहने का अभिप्राय है कि जो मनुष्य तपपूर्वक स्वाध्याय करता है उस पर कृपा होती है। **'तपसा चीयते ब्रह्म'**—तप के द्वारा ही ब्रह्म की पहचान की जाती है। तप और स्वाध्याय दोनों मिल जायें तो सोने पर सुहागा हो जाता है। जब सत्व का उद्रेक बढ़ जाता है तब प्रणिध ान होता है फिर तो—

सुनत न काहू की कहत न अपनी बात।
नारायण या मे मगन रहत दिन रात।।

ईश्वर प्रणिधान से समाधि सिद्ध हो जाती है। यदि मनुष्य सिद्धयोग का विद्यार्थी न बन सके तो उसको क्रियायोग (साधनयोग) का विद्यार्थी बनना ही चाहिए।

मनुष्य यदि ध्यान, धारणाओं का अभ्यास करता है, तो इससे वह पुण्य प्राप्त करता है फिर सिद्ध महापुरुष की अनुकम्पा होती है। तब ही जन्म मरण का चक्र छूट सकता है। जितने भी भक्तात्मा तथा गोपीचन्द, भर्तृहरि, गोरखनाथ जालन्धरनाथ आदि जितने भी योगी हुये हैं। वह सिद्धानुकम्पा से बने है। उनके गुरुओं की कृपा के साथ वे पूर्णयोगी बनें और अजर—अमर होकर भारतभूमि पर विचर रहे हैं। इसके अतिरिक्त जिनको हम भक्तात्मा कहते हैं—मीराबाई, तुलसीदास, नरसीमेहता, ध्रुव, प्रहलाद आदि जिन्होंने ईश्वर के सम्मुख आत्म समर्पण किया है—ईश्वर प्रणिधान किया है। उनके ऊपर जो कृपा हुई वह सिद्धानुकम्पा ही थी। सिद्धों की कृपा से उनको ये स्थितियाँ प्राप्त हुई अन्यथा नहीं हो सकती थीं। मैंने पिछले व्याख्यानों में संकेत किया था कि कोई भी मनुष्य किसी भी प्रकार की साधना करता है अन्त में उसे सिद्धयोग में प्रवेश करना पड़ता है। जितने भक्तात्माओं को ईश्वर की कृपा प्राप्त होती है—दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है, ईश्वर के दर्शन होते हैं, वे सब सिद्धयोग के विद्यार्थी रहे। सिद्धों की अनुकम्पा के साथ ही उन्हें दर्शन आदि हुए।

मैंने प्रातःकाल के प्रकरण में तुम्हें यह बताया था कि भगवान ने अर्जुन को गीता के दसवें अध्याय तक का ज्ञान सुना दिया, किन्तु अर्जुन को बोध नहीं हुआ और कहने लगा—**सर्वमेतदृतं मन्ये यन्मां वदसि केशव।** आप ने जो कुछ कहा उसे मैं सत्य मानता हूँ। किन्तु मैं आपके दिव्य—अविनाशी रूप को देखना चाहता हूँ यदि आप दिखा सकते हैं तो कृपा कर दिखा दीजिए। इसके उत्तर में भगवान ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया—**'न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा'।**

अर्जुन ! तू इन आँखों से मेरे उस रूप को नहीं देख सकता इसलिए मैं तुम्हें दिव्य—दृष्टि

देता हूँ जिससे तू मेरे इस दिव्य रूप को देखने में समर्थ हो जायेगा। भगवान ने ऐसा ही किया–उस पर शक्तिपात किया– दिव्यदृष्टि दी जिससे अर्जुन ने भगवान के दिव्य रूप को देखा इसी का नाम सिद्धानुकम्पा है। मैंने कल तुम्हें एक बात और बताई थी कि जो स्वाध्यायशील हैं। उन्हें इष्टदेव के, सिद्धों के, योगियों के दर्शन हुआ करते हैं। **'स्वाध्यायादिष्टदेवता सम्प्रयोगः'** स्वाध्याय से इष्टदेव के दर्शन होते हैं। जो लोग स्वाध्यायशील होते हैं, मन्त्रों का खूब जाप करते हैं, स्तोत्रों का खूब पाठ करते हैं उन्हें सिद्ध दर्शन हुआ करते हैं। तुलसीदास ने श्री राम के दर्शन के लिए बनारस में जाकर लम्बे समय तक तप पूर्वक स्वाध्याय किया। इष्टदर्शन न होने के कारण निराश होकर लौटने लगे तो भगवान शिव ने वृद्ध ब्राह्मण के रूप में आकर कहा–तुलसीदास ! तुम बनारस छोड़कर क्यों जा रहे हो ? उन्होंने कहा– मुझे अब तक भगवान शंकर के दर्शन नहीं हुये। वृद्ध ब्राह्मण ने कहा–मैं ही शिव हूँ। भगवान शिव ने तुलसीदास को अपना रूप दिखाया और फिर पूछा–तुम क्या चाहते हो ? उन्होंने कहा–मैं भगवान राम का दर्शन चाहता हूँ। भगवान शिव ने आज्ञा दी तुम चित्रकूट चले जाओ वहाँ तुम्हें इष्ट के दर्शन होंगे। लोकोक्ति प्रसिद्ध है।

चित्रकूट के घाट पर भई संतन की भीड़।
तुलसी दास चन्दन घिसे तिलक देत रघुवीर।।

तुलसीदास ने रामचरित मानस लिखा। जिसका फल हुआ कि वह रामचरित मानस आज भी वेद पाठ की तरह पढ़ा जाता है। और जो लोग मन से रामचरित मानस का पाठ करते हैं। **'मंगल भवन अमंगल हारी'** आदि का संपुट लगा करके, तो उनके अमंगलों का नाश होता है। भगवान शिव ने राम चरित मानस में अपनी शक्ति भर दी थी। यह थी सिद्धानुकम्पा। इसी प्रकार नरसी मेहता पर भी हुई। मैं तुम्हें समझा दूँ। तुम अपने मन में सोचते होंगे–ठीक है, भगवान की कृपा हुई तुलसीदास पर, नरसी मेहता पर किन्तु उनके ऊपर कौन से योगिराज की कृपा हुई या दर्शन हुये। देखो ! सिद्ध दो प्रकार के होते हैं। एक तो वे सिद्ध हैं जो अनादि सिद्ध हैं जो कभी भी जन्म–मरण के क्रम में नहीं पड़े। उन्हें भी योग दर्शन में पतञ्जली जी ने सिद्ध माना है। ईश्वर के स्वरूप का वर्णन करते हुये कहा है–

'क्लेश कर्मविपाकाशयैरपरामृष्टा पुरुषविशेष ईश्वरः'

जो क्लेश, कर्म, विपाक और आशय से अपरामृष्ट–अछूता है वह ईश्वर है और वह ईश्वर– **'स तु सदैव मुक्त' सदैव ईश्वरः प्रकर्षगत्या सिद्धः'** वह ईश्वर सदा ही मुक्त है, सदा ही ईश्वर है तथा उनकी सिद्धता में कभी कमी नहीं आई। वे हमेशा ही सिद्ध होते चले आते हैं। उनको किसी प्रकार की साधना नहीं करनी पड़ती, क्योंकि उनमें क्लेश (अविद्या) कभी नहीं रहता। दूसरे वे सिद्ध हैं जो साधना करते–करते अथवा सिद्धों की कृपा से सिद्ध हो जाते हैं। मैंने योगदर्शन के आरम्भिक प्रकरण में यह बात बताई थी कि भगवान पञ्जलि जी ने प्रकृति–पुरुष विवेक को लक्ष्य माना है। चित्तवृत्तियों का समूलोन्मूलन ही योग का लक्ष्य है।

'सत्वपुरुषयोः शुद्धि साम्ये कैवल्यम्' बुद्धि अपने रूप में आ जाये और पुरुष अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाये।

'ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः' अशं और अंशी में कोई भेद नहीं रहता जल और जल की बूँद में कोई भेद नहीं है। अशं और अंशी का सम्बन्ध वैसे ही है जैसे यह कपड़ा और इसका धागा। इसलिये जीव भी ईश्वर का ही रूप है। बुद्धि और पुरुष का मेल यदि समाप्त कर दें तो, जो सिद्ध हो गये हैं अर्थात् जिन्होंने बुद्धि और पुरुष के मेल को समाप्त कर दिया है। और अपने स्वरूप में स्थित हो गये हैं, अणिमादि सकल सिद्धियाँ नित्य जिनके पास रहती हैं वे लोग सिद्ध कहलाते हैं। ईश्वर और इन सिद्धों में एक ही अन्तर है, ईश्वर सदा से ही सिद्ध है, मुक्त है। उनकी सिद्धता में कभी कोई कमी आई ही नहीं। इस प्रकार से दो प्रकार के सिद्ध हैं– स्वतः सिद्ध और साधनासिद्ध। स्वयं सिद्ध ईश्वर के बारे में कहा गया है–**'तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम्'** उनमें सर्वज्ञता की पराकाष्ठा होती है। इसका मतलब यह है कि सर्वज्ञ और भी है। इसलिये भगवान शिव, विष्णु, श्री कृष्ण आदि अनादि सिद्ध हैं। जो साधना करते हैं, उन पर ये कृपा करते हैं। उन्होंने साधकों को दिव्य चक्षु प्रदान किये जिससे वे उनके दर्शन करने वाले बन गये। कुछ लोग कहा करते हैं कि इन भक्तों ने कौन सा आसन किया, प्राणायाम किया, कौन सी समाधि लगाई मैं कहता हूँ उन्होंने योग ही किया। जिसके फलस्वरूप सिद्ध कृपा हुई। मैंने तुम्हें यह बताया था कि हर व्यक्ति को दर्शन कृपा पूर्वक ही होते हैं जब सिद्धों की कृपा हो जाती है तब भक्त का कल्याण होता है। **'ततः सिद्धस्य कृपया योगी भवति'** सिद्ध की कृपा से ही मनुष्य योगी बनता है यह भगवान शिव की कही हुई बात है। कोई कान इधर से पकड़ ले या ऊपर से पकड़ ले, रास्ता आ जाता है वही पर। **'नृणामेकोगम्यस्त्वमसि पयसामर्णविव'** मैं समझता हूँ दुनियाँ के सभी साधक, हिन्दूमात्र ही नहीं– ईसाई, यहूदी, मुसलमान आदि जितने भी उपासक हैं वे सभी योग साधना करके ही लक्ष्य को पाते हैं। योग से ही ईश्वर का साक्षात्कार आत्मानुभूति, सत्यज्ञान व आत्मज्ञान होता है। योग के बिना कोई परमगति को पा नहीं सकता। यह निश्चित सिद्धान्त की बात है। मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि व्यक्ति का उद्धार सिद्धानुकम्पा से ही होता है। चाहे कोई कुछ भी करता रहे कालान्तर में पुण्य प्रभाव से सिद्धों की कृपा प्राप्त होगी तभी वह कल्याण के उच्चतम स्रोत को प्राप्त कर सकता है। अब रही बात यह कि हर व्यक्ति को सिद्धानुकम्पा का लाभ नहीं हो सकता इतने पुण्य नहीं होते। पुण्यों का भी खजाना जमा करना कठिन बात है। कोई पुण्य करता है साथ में ख्याति चाहता है दुनियाँ का भला तो अवश्य होता है–एक प्रकार से उसकी जितनी बड़ाई होती है उस बड़ाई के साथ ही उसका पुण्य प्रायः समाप्त हो जाता है। जो लोग इस प्रकार ख्याति लाभ को नहीं चाहते हैं उनका पुण्य बढ़ता रहता है और कालान्तर में वे कृपा के भागी बन जाते हैं। अभिप्राय यह है कि मनुष्य को पुण्य का बदला कुछ तो साथ–साथ मिलता रहता है। और कुछ जन्मान्तर

में–लोग लोकान्तर में मिलता रहता है। अच्छा है कि मनुष्य पुण्य करते–करते निष्काम हो जाये। पुण्य के प्रति निष्काम भावना एक प्रकार से ही हो सकती है–

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजिविषेत शतः समाः।

कर्मरत रहने वाला व्यक्ति निष्कामता को प्राप्त हो जाता है। **'आरूरूक्षो मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते'** यह भगवान ने आज्ञा दी है। जो लोग केवल जीभ से ब्रह्मास्मि–ब्रह्मास्मि करते हैं, पड़े रहते हैं कर्म नहीं करते हैं। श्री प्रभुजी कहा करते थे कि ऐसे लोग भ्रमोऽस्मि भ्रमोऽस्मि ही कहते हैं। इसलिये जो मनुष्य कर्ममीमांसा के अनुसार कर्मरत नहीं रहता वह पतन की ओर चला जाता है। जो अपने नियमों का कभी उल्लंघन नहीं करता वह आगे चलकर अवश्य योगी बन जायेगा। मैंने तुम्हें बताया था कि बिना पुण्य के सिद्ध संगति नहीं मिलती और यदि मिल भी जाये तो उनके मन को आकर्षित करना साधारण बात नहीं। अरूचिकर हरकतें, मनुष्य का अभिमान, उनको अपनी ओर आने ही न दें। श्रीप्रभु जी कहा करते थे यदि कोई जंगलों में भी चला जाता है और चाहे कि सिद्धों का वरदान हो यदि कोई पुण्यकर्मा हो तो बात अलग है अन्यथा पापात्मा तो शाप लेकर ही आता है। इसलिये मनुष्य को अपने पुण्यों को भण्डार भरते ही रहना चाहिये। इसके लिये क्रियोयाग का अभ्यास करना चाहिये। मनुष्य को तपपूर्वक स्वाध्याय व ध्यानयोग का अभ्यास करना चाहिये, इससे कालान्तर में सिद्ध कृपा हो जाती है और वह कल्याणपथ पर आरूढ़ हो जाता है। इसलिये मेरी इन बातों को सुनकर के अपने को पुण्य पथ पर लगाओ, साधना करो। श्रीप्रभुजी की कृपा होगी। बार–बार सभी को आशीर्वाद।

* * *

सूचना

सभी गुरु भाई बहिनों को यह सूचित करते हुये हर्ष हो रहा है कि गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का परमपावन जन्मोत्सव ५ अक्टूबर २००३ विजयदशमी के दिन श्री सिद्धगुफा सवाँई आगरा में हर्षोल्लास के साथ मनाया जा रहा है। सभी भाई-बहिन सम्मिलित होकर गुरुपूजन का तथा गुरुधाम का दर्शन लाभ प्राप्त करें। सभी ब्रह्मचारी गण इसे धूमधाम से मनाने की तैयारी कर रहे हैं।

निवेदक–

आचार्य दासलाल ब्रह्मचारी

व्यवस्थापक

श्री सिद्धगुफा सवाँई (एत्मादपुर)

गुरुदेव भगवान् का प्राकट्य दिवस

आचार्य (डा०) दासलाल ब्रह्मचारी

आनन्दकन्द जीवनधन सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का परमपावन प्राकट्य सन् १९०९ ई० को विजयदशमी के परम शुभ दिन हुआ था। गुरुदेव स्वयं अपने मुखारविन्द से एक दिन बता रहे थे कि उन्होंने एक बार श्री प्रभु जी से प्रश्न किया था कि 'प्रभुजी ! जब आप नेपाल हिमालय से अवनि मण्डल पर आये उस समय हमारा जन्म भी नहीं हुआ होगा। ''इस पर आनन्दकन्द श्री प्रभुजी ने कहा—जब हम नेपाल से आये उस समय तुम्हारी आयु डेढ़ वर्ष की थी''। श्री प्रभु जी १९११ के लगभग आये थे। गुरुदेव उस समय डेढ़ वर्ष के थे।

गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का आविर्भाव हरियाणा प्रान्त में एक छोटे से गाँव अलूपुर में हुआ। गाँव में पं० हरिनाम बहुत ही धार्मिक परोपकारी स्वभाव के व्यक्ति थे। उनको दो पुत्र तथा एक पुत्री हुई। दो पुत्रों में बड़े पुत्र का नाम पं० देवीराम था तथा छोटे का नाम शिवनारायण था। बड़े पुत्र पं० देवीराम बहुत ही धार्मिक देशभक्त तथा वेदनिष्ठ विद्वान महापुरुष हुए। ये आर्य समाज के दृढ़ प्रचारक थे। ये देश के कोने—कोने में जाकर स्वामी दयानन्द जी महाराज के आर्य सिद्धान्तों के प्रचार—प्रसार में जुटे रहते थे। इन्हीं को परम पुण्य के फलस्वरूप एक पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई। यही महापुरुष हम लोगों के गुरुदेव अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज विख्यात हुये। ये जन्मजात योगी थे। परिवार में आर्यसमाज की लहर थी किन्तु ये भगवान् श्री कृष्णचन्द्र के सायुज्य भाव को प्राप्त महायोगी थे। जब ये डेढ़—दो वर्ष के थे तो इन्हें भगवान श्री कृष्ण का हर समय साक्षात्कार बना रहता था जिसका वर्णन ये अपने 'माता श्री' से करते थे किन्तु उन्हें इनकी बातों के रहस्य का ज्ञान नहीं हो पाता था। गुरुदेव उठते—बैठते हर समय अखण्ड मण्डलाकार तेज से अपने को व्याप्त देखा करते थे। अपनी 'दिव्य जीवन दर्शन' नामक पुस्तक में उन्होंने इस बात का संकेत दिया है।

इनके पिता श्री की इनके जीवन में अमिट छाप बनी रही। उन्होंने प्रारम्भ से ही तपोमय जीवन सिखा दिया। अल्प आयु में ही प्रातः स्नान, सन्ध्या एवं ध्यान का नियम दृढ़ता से जीवन के अभिन्न अंग के रूप में अपनाये गये। पिताश्री के शिक्षाओं एवं उपदेशों की गहरी छाप जीवन पर्यन्त बनी रही। 'मातृवान, पितृवान, आचार्यवान पुरुषोवेद' अर्थात् मातृवान, पितृवान एवं आचार्यवान् व्यक्ति ही परमात्मा को पाता है। मनुष्य के महान बनने में इन तीनों की आवश्यक भूमिका अपरिहार्य है। पिता श्री ने इन्हें ऊँची से ऊँची शिक्षा देने का प्रयास किया। इसीलिये इन्हें लाहौर में आचार्य विश्वबन्धु जी के महाविद्यालय में दाखिला दिलाया गया। आचार्य विश्वबन्धु जी के तपोमय जीवन एवं परोपकारी स्वभाव का विशेष प्रभाव गुरुदेव के जीवन में पड़ा। अपने

शिक्षा गुरू के प्रति गुरुदेव की निष्ठा आजीवन देखने को मिली ! वे सदा ही अपने शिक्षा गुरु के उदात्त व्यक्तित्व एवं महानता का स्मरण करते रहते थे। जब भी वे उनके साधु आश्रम में होशियारपुर जाते थे तो उनके चरणों में अपनी गुरुदक्षिणा समर्पित करना कभी नहीं भूलते थे। यह देखकर बहुत आश्चर्य होता है कि स्वयं इतने प्रतिष्ठित एवं महान होते हुये भी कितनी अपार निष्ठा अपने गुरु के प्रति थी। वस्तुतः वे अपने शिष्यों को शिक्षा देना चाहते थे कि शिष्य को अपने शिक्षा गुरु के प्रति भी ऐसे ही समर्पित होना चाहिये।

गुरुदेव का जन्मोत्सव सन् १९५५ से मनाया जाने लगा। दिल्ली के हमारे वरिष्ठ गुरुभाई प्रो० ऋषिराम गुप्त हैं उन्होंने ही अपने यहाँ प्रथम बार गुरुदेव का जन्मोत्सव मनाया। तभी से यह उत्सव मनाया जाता रहा है। तब से अलग–अलग स्थानों के गुरुभाई अपनी ओर से यह उत्सव मनाया करते थे। गुरुदेव को अपने यहाँ बुला ले जाते थे और यह कार्यक्रम प्रतिवर्ष बदल–बदल कर मण्डलों के द्वारा मनाया जाता रहा है।

गुरुदेव के जन्मोत्सव के समय सभी गुरुभाई कार्यक्रम के अनुसार गुरुदेव जहाँ होते थे पहुँच जाते थे। विजय दशमी के दिन गुरुदेव को दूध, दही, घृत शहद आदि से स्नान कराया जाता था। वैदिक मन्त्रों के द्वारा शिवाभिषेक की भाँति गुरुदेव का अभिषेक कराया जाता था। शिष्य के जीवन में यही एक दिन होता था जब उसे गुरुदेव का चरणोदक लेने का अधिकार तथा सौभाग्य प्राप्त होता था। अन्य दिनों में गुरुदेव जी कभी भी चरण धोने तथा चरणोदक लेने की आज्ञा नहीं देते थे। वैसे तो गुरुपूर्णिमा के अवसर पर चरणोदक लेने की प्रथा है किन्तु गुरुदेव जी उस दिन भी किसी को यह सुअवसर नहीं देते थे। केवल मात्र जन्मोत्सव के दिन ही चरण धोने तथा चरणोदक लेने की छूट थी। गुरुदेव का चरणोदक समस्त पापों का सुखाने वाला होता है। इसलिये श्रद्धा भक्ति पूर्वक इसका सेवन करना चाहिये। गुरुकृपा से ही शिष्य को ज्ञान का प्रकाश मिलता है। जप, तप, सेवा तथा ध्यान से शिष्य को गुरुदेव का अध्यात्म प्रसाद मिलता है। गुरुदेव ही पूर्णपुरुष हैं वे ही जीव को पूर्णत्व दे सकते हैं।

सर्वसमर्थ गुरुदेव ही शिष्य के अन्दर योग का प्रकाश भरते हैं। शिष्य का परम उपकार गुरुदेव ही कर सकते हैं और कोई नहीं।

सन्त कबीर, नानक, सूर, मीरा, सहजोबाई आदि गुरुभक्तों ने गुरु को ईश्वर से बढ़कर माना है। गुरुदेव को 'साक्षात् परब्रह्म' कहा गया है। गुरुदेव व्यापक सत्ता के स्वामी होने पर भी व्यक्त रहकर शिष्यों का कल्याण करते हैं। सदेह गुरु शिष्य का सद्यः कल्याण करते हैं। गुरु कृपा से ही शिष्य के समस्त पाश कटते हैं। शिष्य के पशुत्व का नाश करने वाले पशुपति रूप गुरुदेव नित्य ही वरेण्य तथा अरण्य हैं। आनन्दकन्द गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का पावन जन्म–महोत्सव उनके सभी आश्रमों में धूमधाम से मनाया जाता है। गुरुदेव ने अपने जीवन काल में अपने पैतृक गाँव अलूपुर में कभी इस उत्सव को मनाने की आज्ञा नहीं दी। उनका

कहना था कि यहाँ हमारे बहुत बच्चे आयेंगे उन सब की ठहरने आदि की व्यवस्था में कठिनाई आयेगी। किन्तु आज यहाँ भी काफी विस्तृत व्यवस्था बन गई है बहुत बड़ा दरबार व सत्संग भवन बना हुआ है। तथा अन्य सुविधायें भी काफी हैं। यहाँ गुरुदेव की जन्म भूमि होने के कारण जन्मोत्सव काफी धूमधाम से मनाया जाने लगा है। इसके अतिरिक्त श्री सिद्धगुफा सवाई में भी यह उत्सव हर्षोल्लास के साथ प्रतिवर्ष मनाया जाता है। दिल्ली स्थित आर.के.पुरम आश्रम में भी यह उत्सव प्रतिवर्ष मनाया जाता है।

श्री गुरुदेव भगवान ने लाखों योग जिज्ञासुओं को योग का पवित्र मार्ग दिया है जिस पर चलकर ये योग के परम लक्ष्य की ओर अग्रसर हैं। यद्यपि भौतिक रूप से गुरुदेव दृष्टिगोचर नही है किन्तु अदृश्य रहकर सब पर कृपायें कर रहे हैं और मार्ग दर्शन कर रहे हैं। योग जगत को उनकी बहुत बड़ी देन है। उनके पावन जन्म–उत्सव के पावन पर्व पर उन्हें हमारा कोटि–कोटि प्रणाम है। उनके परम आह्लाद दायिनी मूर्ति का स्मरण शिष्य की चितिशक्ति प्रस्फुटित होकर रोम–रोम को प्रकाशित करने वाली है।

* * *

जनमानस में से दुष्प्रवृतियों को हटाकर उनके स्थान पर सद्प्रवृतियों की स्थापना करना अत्यन्त ही उच्च कोटि का एवं महत्वपूर्ण कार्य है। पूर्व काल में लोकनायक तथा मार्ग–दर्शक ऋषि–मुनि गण आत्म–शक्ति से सम्पन्न थे। वे केवल वाणी से ही नहीं अपनी आन्तरिक महानता की किरणें फेंककर जनमानस को प्रभावित करते रहे। मस्तिष्क की वाणी मस्तिष्क तक पहुँचती है तथा आत्मा की आत्मा तक। कोई सुशिक्षित व्यक्ति अपनी ज्ञान–शक्ति का लाभ सुनने वालों को उनकी जानकारी बढ़ाने के लिए वाणी द्वारा देता है। किन्तु अन्तःकरण में जमी हुई आस्ता में परिवर्तन का कार्य ज्ञान से नहीं आत्म–शक्ति से ही सम्पन्न हो सकता है। प्राचीन काल के ऋषि–मुनि इस तथ्य को भली–भाँति जानते थे। इसीलिए वे दूसरों को उपदेश देने में वाणी द्वारा सेवा करने में कम तथा अपना आत्म–बल में अधिक समय लगाते थे, तपस्या करते थे।

बीसवीं शताब्दी के महान सिद्धयोगी सद्‌गुरुदेव

योग-योगेश्वर अनन्त श्रीचन्द्रमोहन जी महाराज

लेखक—पूर्णचन्द्र पन्त

सद्‌गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज श्री प्रभु जी के अनन्य भक्तों और सर्वतोभावेन समर्पित शिष्यों में से एक हैं।

उनका जन्म जिला करनाल (हरियाणा) के ग्राम अलुपुर में पवित्र गौडवंशीय ब्राह्मण पंडित देवीराम जी के घर १६ अक्टूबर सन् १६०७ को हुआ।

वे जन्म से ही योगी थे और योगेश्वर श्रीकृष्ण में लय रहा करते थे। ४–५ वर्ष की आयु में उन्हें श्रीकृष्ण के बाल रूप में दर्शन हुआ करते थे और वे उनके साथ खेला करते थे। कभी–कभी उन्हें परम तेजस्वी स्वरूप में भी श्रीकृष्ण के दर्शन हुआ करते थे। उनकी बाल लीलायें श्री कृष्ण की बाललीलाओं से मेल खाती थी। ३–४ वर्ष की आयु में वे अपने घर में रखे मक्खन को चुराकर बड़े चाव के साथ खा जाया करते थे।

उनकी प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही हुई और फिर उच्च शिक्षा के लिये उन्हें श्रीमद्दयानन्द ब्रह्म महाविद्यालय लाहौर में प्रवेश दिलाया गया जो कि उस समय का एक आदर्श गुरुकुल था और तपोमूर्ति आचार्य विश्वबन्धु जी उसके संचालक और प्राचार्य थे। बाद में वे लाहौर छोड़कर अमृतसर में शिक्षा ग्रहण करने लगे। शिक्षाकाल में आपके मन में योगी बनने की प्रबल भावना जाग्रत हुई और इसी भावना के वशीभूत होकर वे अमृतसर नगर से कुछ मील दूर एकान्त में स्थित एक शिवालय में चले गये और दो महीने वहाँ रहकर बड़े तीव्र संवेग से भगवान शंकर की उपासना करते रहे। अनुष्ठान काल पूरा होने से दो दिन पूर्व उन्हें स्वप्न में भगवान शंकर के दर्शन हुए और उनका आशीर्वाद प्राप्त हुआ। अगले दिन योगेश्वर प्रभु रामलाल जी महाराज के दर्शन हुए और उन्होंने यह आदेश दिया—"अब तुम हमारे पास चले आओ।"

इससे सन्तुष्ट होकर और अपना अनुष्ठान पूरा करके वे अमृतसर लौट गये और अध्ययन कार्य में जुट गये, किन्तु उनके मन में बार–बार यह प्रश्न उठा करता था कि—स्वप्न में दर्शन देने वाले वे महात्मा कौन हैं और कहाँ रहते हैं ? सौभाग्य से कुछ ही दिन बाद योगिराज गुलखराज जी महाराज से उनकी भेंट हुई और उनसे प्रभु जी का परिचय पाकर वे उनके दर्शनार्थ योग साधन आश्रम ऋषीकेश पहुँच गये। उस समय उनकी आयु १६ वर्ष के लगभग थी। प्रभु रामलाल जी महाराज उन्हें देखकर मुस्कराते हुए बोले—"अच्छा ! तुम आ ही गये हो, तुम तो हमसे पूछ रहे थे कि—कहाँ आऊँ— कैसे आऊँ— ? उन्होंने उन्हें बड़े प्यार से कुछ दिन अपने पास रखा, शुभ मुहूर्त में विधिपूर्वक योगदीक्षा दी और उनकी आन्तरिक भावना को देखते हुए उन्हें योगसाधना के लिये वृन्दावन भेज दिया। श्री वृन्दावनधाम में रहते हुए वे नियम पूर्वक

प्रातः ब्रह्म मुहूर्त में गुरुपदिष्ट विधि से तीन घण्टे ध्यानाभ्यास किया करते थे, गुरुमन्त्र का हर समय मानसिक जप करते रहते थे तथा शाम के समय मानसिक जप करते रहते थे तथा शाम के समय योगेश्वर श्रीकृष्ण के लीला स्थलों के दर्शन किया करते थे। ६ महीने के अनवरत अभ्यास से योगविद्या के सभी रहस्य उनके सामने प्रकट हो गये, उनको महावाक्यों का साक्षात्कार हुआ तथा कुण्डलिनी जागरण एवं षट्चक्र भेदन आदि क्रियायें सिद्ध हो गई। १८ वर्ष की अल्पायु में उनको दूरदर्शन, दूरश्रवण, वाक्‌सिद्धि, संकल्प सिद्धि तथा कायनिर्माण आदि सिद्धियाँ प्राप्त हो गई। इन दुर्लभ सिद्धियों को प्राप्त कर लेने पर भी उन्हें कभी रत्ती भर भी अहंकार नहीं हुआ। उन्होंने न तो कभी सिद्धियों का प्रदर्शन किया और न अपना अभ्यास ही छोड़ा। उनकी स्थिति वही थी जैसा कि वे बाद में अपने शिष्यों को सावधान करते हुए कहा करते थे—"योगी को चाहिये कि वह समुद्र पीकर भी अपने होंठ सूखे दिखाये।"

उन्होंने योगेश्वर प्रभु रामलालजी को सर्वतोभावेन आत्म समर्पण कर दिया था। ३२ वर्ष की आयु तक वे प्रभुजी की अगाध श्रद्धा एवं समर्पण भाव से सेवा करते रहे तथा उनके संरक्षण एवं मार्गदर्शन में योग साधना करते रहे। इस बीच प्रभु जी ने कृपापूर्वक उन्हें खेचरी सिद्ध करा दी तथा योगदीक्षायें देने की आज्ञा प्रदान की और स्वयं कुछ महीनों के लिये ऋषिकेश से अल्मोड़ा चले गये। दीक्षा देने में अत्यधिक संकोच करते हुए भी अपने गुरुदेव की आज्ञा के पालनार्थ उनकी अनुपस्थिति में उन्होंने कई विरक्त सद्‌गृहस्थों तथा सन्यासियों को योगदीक्षा दी और उनकी ऊँची—ऊँची ध्यान स्थितियाँ बनीं। यह सब देखते हुए भी वे शिष्य ही बने रहना चाहते थे, गुरु बनना उन्हें बिल्कुल पसन्द नहीं था। वे प्रपंच से बचना चाहते थे और निवृत्ति मार्ग को अपनाना चाहते थे। उनके मन में वैराग्य के भाव दिन—प्रतिदिन प्रबल होते जा रहे थे।

सन् १९३५ के आसपास की घटना है उन दिनों प्रभु जी योग साधन आश्रम ऋषिकेश की व्यवस्था का काम उन्हें सौंपकर स्वयं अमृतसर में निवास कर रहे थे। इस बीच एक दिन उनके मन में इतना तीव्र वैराग्य जाग्रत हुआ कि वे मृगछाला, टाट, कमण्डल और एक शीशी में बड़ का दूध लेकर हिमालय को प्रस्थान करने लगे। ज्योंही वे आश्रम के द्वार से एक कदम आगे निकले त्योंही पोस्टमैन ने आकर उन्हें एक पत्र पकड़ाया। यह पत्र योगेश्वर प्रभु रामलाल जी का था। पत्र में लिखा था—

"चिरंजीव ! हम हिमालय से आकर बस्तियों में रह रहे हैं और तुम हिमालय की ओर जाने की सोच रहे हो। ऐसा करना तुम्हारे लिये उचित नहीं है। तुमने जो कदम आगे बढ़ाया है उसे तुरन्त पीछे हटा लो, यह हमारी आज्ञा है।"

पत्र को पढ़कर उनका सारा उत्साह जाता रहा और वे पीछे मुड़कर आश्रम के अन्दर चले गये। उन्होंने अपने गुरुदेव से मूक निवेदन किया—"प्रभो ! आज मुझसे बहुत बड़ी भूल हो गयी थी इसके लिये आप मुझे क्षमा कीजियेगा। भविष्य में आपकी आज्ञा के बिना मैं कोई भी नया

कार्य नहीं करूँगा। अब मैं वही करूँगा जो आप चाहेंगे या करवायेंगे। आपके पवित्र आदेशों का पालन करना ही अब मेरे जीवन का एकमात्र लक्ष्य रहेगा।"

तब से लेकर योगिराज चन्द्रमोहन जी महाराज सदा-सदा के लिये प्रभुजी के बन गये। उनका मन और बुद्धि श्री प्रभु जी के मन और बुद्धि में लय हो गये।

सन् १९३८ में प्रभुजी के लीलावसान के उपरान्त वे शोकातुर एवं निराश होकर पुनः तीर्थाटन एवं तपश्चर्या करने निकल पड़े और बड़े तीव्र संवेग से कभी वृन्दावन में यमुना जी के तट पर, कभी हरिद्वार में चण्डी पर्वत पर और कभी ब्रह्मपुरी के निर्जन वनों में तपस्या करते रहे। सन् १९४२ में श्री प्रभु जी की प्रेरणा से वे सवाई ग्राम स्थित उनकी पावन तपस्थली-"गुरु का बाग" पहुँचे। वहाँ उनकी कच्ची गुफा की लिपाई-पुताई की, उसका दरवाजा लगवाया तथा उसके पास ही अपने रहने के लिये घास का एक छप्पर बनाया। वह स्थान उस समय एक वीरान जंगल की तरह था। चारों ओर झाड़ी झंखाड़ थे, जिनमें सर्प, बिच्छू आदि रहा करते थे। श्री प्रभु जी की पवित्र कीर्ति का विस्तार करने का उद्देश्य लेकर वे गर्मी, सर्दी तथा मच्छरों का आघात सहन करते हुए उस स्थान पर रहने लगे और योग प्रचार कार्य में जुट गये। वे आरम्भ में योगासन तथा यौगिक क्रियाओं द्वारा रोगियों का उपचार कराते रहे, बाद में उन्हें अपने सामने ध्यानाभ्यास भी कराने लगे। धीरे-धीरे वहाँ रोगियों, आर्तजनों एवं जिज्ञासुओं की इतनी भीड़ एकत्रित होने लगी कि-उन्हें भोजन करने का भी समय नहीं मिल पाता था। वहाँ उन दिनों न तो भोजन बनाने की सुविधा थी और न उसके लिये उनके पास समय ही था। अतः वे मध्यान्ह दो बजे तक लोगों को निपटाकर सवांई ग्राम में स्थित मन्दिर के पुजारी काशीराम जी के पास जाकर भोजन किया करते थे। भोजन एक ही समय करते थे। रात्रि को निराहार रहते थे। वहाँ से लौटकर अपने हाथ से सूत्र नेतियाँ तैयार किया करते थे। सन्ध्याकाल को आरती-पूजन के पश्चात वे ग्रामवासी वृद्धजनों से प्रभु जी की लीला कथाओं को सुनकर आनन्दित हुआ करते थे।

इस प्रकार उन्होंने थोड़े से समय में ही उस स्थान को एक सुन्दर आश्रम के रूप में परिवर्तित कर दिया और अपने गुरुदेव योगेश्वर प्रभु रामलाल जी के स्मारक के रूप में उनकी उस तपस्थली का नाम श्री सिद्धगुफा सवांई रखा। वहाँ से उन्होंने देश के कोने-कोने में तथा विदेशों में भी प्रभु जी की अमर कीर्ति का विस्तार किया तथा योगविद्या की महिमा का विस्तार किया तथा योगविद्या की महिमा से जन-जन को अवगत कराया। उनके सत्प्रयत्नों से सवांई ग्राम "सवांई धाम" बन गया और वह पवित्र आश्रम एक "सिद्धपीठ" बन गया।

सद्गुरुदेव योगिराज चन्द्रमोहन जी महाराज ने लाखों रोगियों को नीरोग बनाया, लाखों संकट ग्रस्त जनों का संकट दूर किया, हजारों मरणासन्न व्यक्तियों को जीवनदान दिया, हजारों जिज्ञासुओं को शक्तिपात दीक्षा द्वारा योगी बनाया तथा हिमालय की कन्दराओं में वर्षों से योग

साधना में लगे हुए सैंकड़ों तपस्वियों को अपने संकल्प मात्र से सिद्ध बना दिया। किन्तु इस सबका श्रेय वे अपने गुरूदेव को ही देते रहे। अपने बारे में वे सदा यही कहा करते थे कि– मैं तो श्री प्रभु जी का एक मामूली सा सिपाही हूँ। वे तो योग–ऐश्वर्य के स्वामी हैं। सारा भण्डार उन्हीं का है, मैं तो केवल एक करछी की तरह हूँ और करछी का ही काम कर रहा हूँ।

योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी अपने गुरूदेव योगेश्वर रामलाल जी महाराज के चित्र को हृदय के साथ लगाकर एवं सामने करके लोगों को योगदीक्षा दिया करते थे और कहा करते थे कि–"हम सबके गुरूदेव श्री प्रभु जी सर्वशक्तिमान एवं सर्वव्यापक है, इनका जितना अधिक चिन्तन करोगे योगमार्ग में उतनी ही अधिक प्रगति होगी।"

हजारों जिज्ञासुओं को एक साथ सिद्ध बना देने की सामर्थ्य रखने वाले, हजारों मील दूर अमेरिका आदि देशों में स्थित कई पवित्रात्माओं को पत्र द्वारा पुष्पप्रसाद अथवा सिद्धगुफा की पवित्र रज भेजकर ध्यानयोगी बना देने वाले एक सिद्ध योगिराज अपने को सदैव एक सामान्य व्यक्ति की तरह ही प्रदर्शित करते रहे। उनकी ख्याति सुनकर कुछ विदेशी वैज्ञानिक यह जानने के लिये कि "इनके अन्दर ऐसी कौन सी शक्ति काम कर रही है तथा सिद्धगुफा की मिट्टी में ऐसे कौन से तत्व हैं जिससे इस प्रकार के चमत्कारपूर्ण कार्य हो रहे हैं" ? अपने वैज्ञानिक उपकरण लेकर उनके पास पहुँचे और उनके मस्तिष्क, हृदय आदि अंगों तथा गुफा की मिट्टी का परीक्षण किया। जब वे किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँचे तो योगिराज जी मुस्कराकर बोले–"लल्ला विशेषता मुझमें या इस गुफा की मिट्टी में कुछ भी नहीं है। विशेषता वाले तो हिमालय में बैठे हुए हैं उन्हीं की कृपा से सब कुछ हो रहा है। यदि हममें या इस गुफा की मिट्टी में कुछ विशेषता है भी तो उसे तुम्हारी ये निर्जीव मशीनें नहीं बता सकती।" यह सुनकर वे लोग निराश होकर लौट गये।

योगिराज चन्द्रमोहन जी महाराज के सैंकड़ो शिष्य सिद्धकोटि के हैं जो कि उनके अमोघ आशीर्वाद से हिमालय की कन्दराओं में समाधिस्थ हैं। बस्ती में रहने वाले उनके विशेष कृपापात्र शिष्यों में योगिराज श्री श्याम बिहारी शुक्ल, योगिराज श्री रघुनन्दन प्रसाद (फिरोजाबाद वाले–टाट बाबा) और संसारसिंह के नाम प्रमुख है। अब इन तीनों का ही शरीर शान्त हो चुका है।

श्री चन्द्रमोहन जी महाराज जहाँ एक आदर्श शिष्य रहे हैं वहीं वे एक आदर्श गुरु भी हैं। उनके उज्ज्वल व्यक्तित्व में सद्गुरू और सद्शिष्य का अनूठा सम्मिश्रण रहा है। जहाँ एक ओर वे अपने गुरूदेव के प्रति समर्पित थे और उन्हें ही अपना सर्वस्व समझते थे वहीं दूसरी ओर अपने शिष्यों के प्रति उनका हृदय अगाध वात्सल्य एवं आत्मीयता के भावों से परिपूरित रहता था। वे अपने शिष्यों को अत्यन्त स्नेह से अपने हृदय से लगाकर पुचकारते हुए कहा करते थे– "लल्ला ! तुम तो मेरी आत्मा के टुकड़े हो।"

उपनिषदों में सद्गुरू के जो लक्षण बताये गये हैं वे उनमें अक्षरशः पाये जाते हैं। जैसे–

आचार्यो वेदसम्पन्नो विष्णुभक्तो विमत्सरः।
योगज्ञो योगनिष्ठश्च सदा योगात्मको शुचिः।।
गुरु भक्ति समायुक्तो पुरुषज्ञो विशेषतः।
एवं लक्षण सम्पन्नो गुरुरित्यभिधीयते।।

अर्थात्–जो स्वयं आचार्य हो, वेदों का ज्ञाता हो, विष्णुभक्त हो, किसी से ईर्ष्या–द्वेष न रखता हो, योगविद्या में पारंगत हो, योग में दृढ़ निष्ठा वाला हो, योगपरायण हो, पवित्र रहने वाला हो, अनन्य गुरुभक्त हो तथा जो परमात्मा का पूर्णरूपेण साक्षात्कार कर चुका हो इन सब उत्कृष्ट गुणों के कारण ही वह महापुरुष सद्गुरू कहलाता है।

योगिराज चन्द्रमोहन जी महाराज अपने ध्यानाभ्यासी शिष्यों को कहीं श्री कृष्णरूप में, कहीं गणपति के रूप में, कहीं योगेश्वर प्रभुरामलाल के रूप में और कहीं भगवान सदाशिव के रूप में दर्शन देते रहे हैं और अब भी वे इन्हीं रूपों में दर्शन देते रहते हैं। किन्तु व्यवहारकाल में उन्होंने अपने आपको सदा छिपाये रखा। चाहे कोई उनका अन्तरंग ही क्यों न रहा हो वह भी उनके वास्तविक स्वरूप को नहीं जान पाया।

श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का सम्पूर्ण जीवन तपोमय रहा है। और वे एक कुशल कर्मयोगी की तरह आजीवन जन कल्याण में संलग्न रहे। जीवन के अन्तिम क्षण तक वे देश के कोने–कोने में घूमकर जन–जन को आत्म कल्याण का सन्देश देते रहे।

२५ जून १९९० को २१ दिन के एकान्तवास के समापन के साथ ही ८३ वर्ष की आयु में उनकी आत्म ज्योति प्रभु रामलाल जी की ज्योति में समा गई।

* * *

विश्वास करो–जहाँ अपने पुरुषार्थ तथा अपनी पृथक क्षुद्र शक्ति पर आस्था है, तब एक तुच्छ अहंकार का तुम पर आधिपत्य है। ऐसे अहंकार के रहते तुम्हारे लिए वस्तुतः भगवान की कृपाशक्ति का कार्य रुका रहता है। कृपाशक्ति चाहती है–पूर्ण निर्भरता, पूर्ण प्रपत्ति और पूर्ण आत्म निवेदन। अपने को अपनी सारी शक्तियों सहित सारी शक्तियों के उद्गम और आकार–स्वरूप भगवान के समर्पण कर दो। अपने समस्त अहंकार को जला दो, गलाकर बहा दो और सर्वतोभाव से कृपामाता का आश्रय ग्रहण करो। फिर देखोगे, कितनी जल्दी और कितनी सुकरता एवं सुन्दरता से तुम्हारी यह आखिरी जीवनयात्रा सफल होती है।

योग-मार्ग

शिवनाथ मेहरोत्रा, वाराणसी

संसार सागर में बंधनों और भँवरों से हर व्यक्ति घिरा हुआ है। भारत में जन्म लेने वाला प्रायः हर व्यक्ति इन बंधनों और बड़वानलों से बचने की जिज्ञासा करता है, यही भारत भूमि की महानता है। धर्म और संप्रदायों की ओर रुझान इसी निमित्त से होती है। योग मार्ग धर्म व सम्प्रदायों से ऊपर है। किसी भी धर्म या संप्रदाय का व्यक्ति योगमार्ग में प्रवेश कर सकता है। धर्म की व्यावहारिक व प्रामाणिक सर्वोच्च साधना ही वस्तुतः योग है। योग मार्ग में प्रवेश के मुख्यतर दो ही हेतु हैं– या तो सच्चे योगी का सान्निध्य भाग्यवशात प्राप्त हो जाए, अथवा पूर्व जन्म के संस्कारों के साथ योगाभ्यास की ओर स्वाभाविक प्रवृत्ति हो। योगमार्ग की साधना प्रत्यक्ष व तत्काल फलवती है। सच्चे योगी का सान्निध्य मिलना इसका मुख्य हेतु है। योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का काशी आगमन का संदेश मुझे जब मिला उस समय (आज से प्रायः २५ वर्ष पूर्व) मैं उनके दर्शनार्थ पहली बार गया। गुरुदेव जी का पहला प्रवचन जो सुना उससे मुझे ऐसा लगा कि हर शब्द वे मेरे सम्बन्ध में ही बोल रहे हैं। उस समय मैं विपत्तियों से इतना ग्रस्त था कि मृत्यु को ही मुक्ति समझता था। गुरुदेव जी ने प्रवचन में कहा कि प्रतिदिन आध े घण्टे ध्यान करो व जो कोई अतिशय प्रिय लगे उसे ही ध्यान में देखो। यदि तुम्हारी समस्या का हल न हो जाय तो ध्यान करना छोड़ देना। इसी बात को गाँठ बाँधकर मैं प्रतिदिन ध्यान में बैठकर प्रियतम श्रीकृष्ण को देखने का प्रयास करने लगा। इसके दस दिनों के अन्दर ही मुझे एक मनीआर्डर से बारह सौ रुपए प्राप्त हुए। (उस समय का बारह सौ रुपया आज के २४ हजार रुपये के बराबर होगा)। परिणाम यह हुआ कि मेरी तात्कालिक मृत्यु की इच्छा समाप्त हो गई और मुझे एक विश्वसनीय मार्ग प्राप्त हो गया। गुरुदेव जी से मैंने पूरी आत्मकथा निवेदन की तो उन्होंने जिन शब्दों में आशीर्वाद दिया वे शब्द ही मुझमें नया जीवन भरने वाले थे। मुझे आज भी यह सोचकर बड़ा आश्चर्य होता है कि इतने स्नेह से आशीर्वाद में सब कुछ दे देने वाले व्यक्ति भी इसी संसार में हो सकते हैं। बाद में गुरु जी ने पत्र लिखकर विजयादशमी पर मुझे आश्रम आने की प्रेरणा दी, जहाँ मैं उनसे दीक्षा प्राप्त कर धन्य हुआ। बाद में गुरु जी का आदेश होने पर मैंने 'सिद्धयोग' में एवं अन्य पत्र पत्रिकाओं में लेख आदि द्वारा अपनी सेवा देनी शुरू की। बाद के हर वर्षों में गुरुदेव जी काशी आते थे तो मेरे निवास पर स्वयं पधार कर मुझे ध न्य करते थे।

योगमार्ग का ध्यान सम्बन्धी गुरुदेव जी का आदेश तो मैं सर्वाधिक बलशाली व महत्वपूर्ण अनुभव करता रहा हूँ। इसी के प्रभाव से हर व्यक्ति इस मार्ग में प्रवेश कर अति सरलता से पूरा लाभ पा सकता है। परन्तु इसके दुरुपयोग से क्या हानि हो सकती है उसकी भी चर्चा करनी उचित होगी।

गुरुदेव जी के आशीर्वाद से सब व्यवस्थाएँ बनती गईं व श्रीमती इंदिरागांधी जी से मैंने सम्पर्क बनाया व उनके अनुग्रह से 'नेशनल हेरल्ड' आदि उनके सभी समाचारपत्रों व पत्रिकाओं में मेरे स्तम्भ छपने लगे। इंदिरा जी के अनुग्रह का अनुभव मेरे जीवन के सर्वोत्तम लम्हों में से है। उन्हीं दिनों मैंने गुरुदेव जी को पत्र लिखकर सूचित किया कि मेरी ध्यान शक्ति क्षीण हो गई है। गुरुजी इस बात पर विनोद पूर्ण लहजे में ही चर्चा करते थे। मेरे विचार से ध्यानशक्ति का प्रयोग सदा सांसारिक उत्कर्ष के हेतु करना ध्यान की प्राप्ति में बाधक हो जाता है। अतः ध्यान करना ही योगमार्ग का सर्वोत्तम साधन और सर्वाधिक सरल साधन है परन्तु ध्यान करने वाले व्यक्ति को संसार के प्रति जागरुक होने के बदले सदा ईशानुग्रह के प्रति ही प्रयासशील रहना चाहिए।

गुरुदेव जी ने ध्यान के सम्बन्ध में जो विशद चर्चाएँ की थीं उन्हें भी प्रस्तुत कर देना उचित होगा। ध्यान के निमित्त सहज आसन से बैठना चाहिए। पूर्व या उत्तर की ओर मुख करके ध्यान करना–ऐसा कोई आदेश उनका नहीं था। क्योंकि ध्यान करने वाला व्यक्ति कहीं भी किसी भी दिशा में, कैसे भी सरल आसन से बैठ कर ध्यान करने में प्रवृत्त हो जाय इतना ही अभीष्ट है। ध्यान के बारे में वे एक कहानी भी सुनाते थे। एक व्यक्ति ने ध्यान के बारे में आदेश मिलने पर अपने गुरु से कहा कि मेरा प्रेम तो अपनी भैंस का जो पड़ा हुआ है उस पर जाता है, क्या उसे ध्यान में देखने से फल मिलेगा ! इस पर गुरू ने आदेश दिया कि अवश्य ही, अपने प्रियतम व्यक्ति या वस्तु को भी ध्यान में देख सकते हो। उस व्यक्ति ने ध्यान में अपने "पड़वे" को प्रेमपूर्वक देखा व इसी ध्यान को अपना लिया। परिणाम स्वरूप उसे ३–४ दिन बाद ही ध्यान में उस पड़वे के चारों ओर से प्रकाश की किरणें फूटती दिखने लगीं और एक हफ्ते में ही पड़वे में चतुर्भुज भगवान नारायण का दर्शन मिलना शुरू हो गया।

इसे महज एक कहानी न समझें। योगमार्ग को जीवन जीने की कला के रूप में अपनाने वाला हर व्यक्ति ध्यान द्वारा उसके सच्चे प्रभाव का स्वयं अनुभव पा सकता है। प्रियतम के ध्यान में यदि भगवती का ध्यान करें तो वह तो सर्वार्थ साधक बनेगा क्योंकि भगवती जगदम्बा का प्रेम व स्नेह अनायास पा जाएगा परन्तु यदि कोई व्यक्ति अपनी प्रेयसी को ध्यान का विषय बनाना चाहे तो वह योगमार्ग नहीं होगा क्योंकि उससे तो अधोगामी विकारों व वासनाओं की ही वृद्धि होगी। अतः प्रियतम वस्तु या स्वरूप का ध्यान करने से तात्पर्य यही है कि भगवान ही सबके स्वभावतः प्रियतम हैं अतः अपने प्रिय स्वरूप में भगवान को पाने हेतु ध्यान से भगवत्कृपा की निश्चित प्राप्ति होगी। ध्यान के सम्बन्ध में गुरुदेव जी कहते थे कि ध्यान के समय पर सब काम छोड़ कर ध्यान में बैठ जाया करो। परन्तु मेरे जैसे सामान्य व्यक्ति द्वारा यह नियम पालन नहीं हो पाता था। मैं तो यही समझता हूँ कि यदि नियम पालन में कोई भी कमी है तो भी ध्यानाभ्यासी व्यक्ति का ध्यान का अभ्यास उसकी सब कमियों से अधिक बलवान सिद्ध होता है।

हों समर्थ हो तो ध्यान हेतु समय का पालन करना श्रेयष्कर होगा। परन्तु यदि सांसा स्थितियों से बँधे हुए हैं तो ध्यान करना ही प्रधानता से कर्तव्य है।

ध्यान के अन्य अनेक प्रकार भी हैं जिनका गुरुदेव जी एवं अन्य सन्त महात्माओं समय-समय पर वर्णन किया है। संकीर्तन, जप, नाद श्रवण, योग के आसन व मुद्राएँ इन स में ध्यान अपेक्षित है। एक 'ध्यान' की साधना में सफल हो जाने पर सभी सिद्धियों का मार्ग खु जाता है। ध्यान करने वाला व्यक्ति हाथ में भस्म लेकर रोगी को औषधि के रूप में ही देता व रोगी के रोग व कष्ट दूर हो जाते हैं। सर्वोपरि ध्यान जगदाता प्रभु के स्वरूप या उन मुस्कराते हुए मुखमण्डल या उनके बाँके चरणकमलों पर परमप्रीति से हृदय में उन्हें देखना है। भगवान के ज्योति स्वरूप का ध्यान उनके सगुण एवं निर्गुण स्वरूपों का सर्वाभीष्टप्रद ध्या है।

* *

विश्वास करो—भगवान् की कृपा तुम पर है ही। वह सदा सभी पर है। सभी को प्राप्त है। तुम विश्वास नहीं करते—मानते नहीं, इसी से अन्य साधनों का सहारा खोजते हो और इसी से उस नित्य प्राप्त जन्मसिद्ध अपने परम धन से वंचित हो रहे हो।'

ईश्वरोपासना

जो सरल भक्ति–विश्वास के साथ प्रभु के चरणों में सर्वस्व समर्पण कर देता है, उसे बहुत जल्दी ईश्वर की प्राप्ति होती है।

संसार में रहना या संसार का त्याग करना भगवान् की ही इच्छा पर निर्भर है। इसलिए उन्हीं पर सब कुछ सौंपकर अपना कर्तव्य किए जाओ। इसके सिवा तुम कर ही क्या सकते हो ?

मैदान में जमा हुआ पानी किसी के इस्तेमाल न करने पर भी अपने आप धूप से सूख जाता है। पापी मनुष्य भी यदि ईश्वर के ऊपर निर्भर होकर पड़ा रहे तो उनकी दया से अपने आप पवित्र हो जाता है।

प्रश्न–संसार में हमें किस प्रकार रहना चाहिए ?

उत्तर–सब कुछ भगवान् को समर्पित कर दो, स्वयं को भी समर्पित कर दो। ऐसा करने पर फिर कोई तकलीफ नहीं रह जाएगी। तब तुम देख पाओगे कि सब कुछ उन्हीं की इच्छा से हो रहा है।

ईश्वर को ब–कलमा दे देना–मैं–पन बिलकुल न रखते हुए ईश्वर की ही इच्छा पर अपना सब कुछ सौंप देना–इससे बढ़कर सरल और सीधा रास्ता और नहीं है।

बन्दर का बच्चा अपनी माँ को कसकर पकड़े हुए उससे लिपटा रहता है, परन्तु बिल्ली का बच्चा पड़े–पड़े सिर्फ 'म्याऊँ–म्याऊँ' किया करता है, बिल्ली स्वयं ही उसे मुँह में पकड़कर उठा ले जाती है। बन्दर का बच्चा अगर हाथ छोड़ दे तो नीचे गिर पड़ेगा क्योंकि उसने स्वयं अपनी माँ को पकड़ रखा है। पुरुषकार और ईश्वरनिर्भरता में यही अन्तर है।

एक आदमी अपने एक बच्चे को गोद में लिये और दूसरे बच्चे को अपना हाथ दिये हुए खेत की मेड़ पर से चला जा रहा था। चलते–चलते आसमान में एक चील को उड़ते देख दूसरा बच्चा, जो अपने पिता का हाथ पकड़कर चल रहा था, मारे खुशी के पिता का हाथ छोड़ पीटते हुए 'पिताजी, देखो कैसी चिड़िया है' कहते हुए चिल्ला उठा। पर हाथ छोड़ते ही वह ठोकर खाकर गिर पड़ा। 'जो बच्चा पिता की गोद में था, वह भी खुश होकर तालियाँ बजा रहा था, पर वह नहीं गिरा क्योंकि पिता ने उसे पकड़ रखा था। इसमें से पहला बच्चा पुरुषकार का उदाहरण है और दूसरा ईश्वरनिर्भरता का।

श्रीमती राधिका को एक बार अपने सतीत्व की परीक्षा देनी पड़ी। उन्हें एक हजार छेदवाले घड़े में पानी भरकर लाने को कहा गया। जब वे वह सहस्रधारा कलश भरकर चलने लगीं तो उसमें से एक बूंद भी पानी नहीं गिरा। यह देख सभी लोग उनकी प्रशंसा करते हुए कहने लगे कि ऐसी सती दूसरी न होगी। इस पर श्रीमती ने कहा, 'तुम लोग मेरा जयघोष क्यों करते हो ? कहो, ''श्रीकृष्ण की जय हो, श्रीकृष्ण की जय हो।' मैं तो उनकी एक दासी मात्र हूँ।''

ईश्वरनिर्भरता कैसी होती है ? जैसे कड़ी मेहनत करने के बाद तकिए से टेककर बैठे हुए आराम से हुक्का पीना। अर्थात् किसी तरह की फिक्र नहीं है, जो करना हो ईश्वर ही करेंगे यह भाव।

संसार में आँधी में उड़ने वाली जूठी पत्तल की तरह रहा करो। जूठी पत्तल आँधी के भरोसे निर्भर रहती है, आँधी उसे जहाँ उड़ा ले जाती है, वहीं जाती है—कभी किसी घर के भीतर तो कभी कूड़े—कचरे में। इसी तरह, प्रभु ने तुम्हें संसार में रख छोड़ा है, तो अभी संसार में रहो फिर जब वे तुम्हें इससे अच्छी जगह पर ले जाएँगे तब उनके भरोसे वहीं रहना। उन पर निर्भर होकर निर्लिप्त रूप से पड़े रहना।

इष्ट की आवश्यकता

घर की बहू सास—ससुर, जेठ—जेठानी सब का आदर—सम्मान करती है, सब की सेवा करती है, किसी की अवज्ञा या उपेक्षा नहीं करती। परन्तु अपने पति को वह सब से अधिक चाहती है। इसी तरह तुम भी अपने इष्टदेवता पर दृढ़ एकनिष्ठ भक्ति रखो पर अन्य देवी—देवताओं की उपेक्षा मत करो। सब देवों के प्रति श्रद्धा रखो कारण सभी देव एक ही परमेश्वर के रूप हैं।

चौसर के खेल में गोटी सब खानों का चक्कर लगाए बिना मंजिल पर नहीं पहुँचती। यदि दो गोटियाँ जोड़ी बाँधकर इकट्ठा चलें तभी उन्हें कोई काट नहीं सकता, नहीं तो अकेली गोटी मंजिल के पास पहुँचकर पकते—पकते भी कट जा सकती है। इसी प्रकार साधना के मार्ग पर भी यदि गुरु और इष्ट के साथ युक्त होकर आगे बढ़ा जाए तो बाधाविघ्न का भय नहीं रहता, यात्रा निर्विघ्न रूप से सफल हो सकती है।

कलकत्ता जाने के लिए कई रास्ते हैं। एक बार किसी मुसाफिर ने एक आदमी से कलकत्ता जाने का रास्ता पूछा। उसने और एक रास्ता बताया। इस तरह वह थोड़ा सा आगे बढ़कर किसी से रास्ता पूछता और उसके दूसरा रास्ता बताने पर अपना पहला रास्ता छोड़ उसी पर चलने लगता। ऐसा करते हुए वह आखिर तक रास्तों पर ही भटकता रहा, कलकत्ता नहीं पहुँच पाया। यदि कलकत्ता जाना हो तो जो ठीक रास्ता जानता है ऐसे एक ही व्यक्ति से रास्ता पूछकर उसी के निर्देशानुसार चलना चाहिए। इसी भाँति, यदि ईश्वर के निकट पहुँचना हो तो एक जन का निर्देश मानकर चलो, नहीं तो फिजूल भटकते फिरोगे।

एक आदमी कुआँ खोदने गया। थोड़ा सा खोदने के बाद ही पानी नहीं आते देख उसने वह जगह छोड़ दी। और दूसरी जगह खोदना शुरू किया। पर जब बहुत सी जमीन खोद चुकने के बाद वहाँ भी पानी नहीं मिला तब उसने वह जगह भी छोड़ दी और तीसरी जगह कुआँ खोदने लगा। पर फिर वही हाल हुआ। इस प्रकार आखिर तक वह कुआँ नहीं खोद पाया। पहले ही स्थान पर यदि वह धीरज के साथ खोदते रहता तो उसे इतनी मेहनत भी नहीं करनी पड़ती और पानी भी मिल जाता। धर्ममार्ग पर भी इस तरह करते हुए बहुत से लोग हताश होकर सारा विश्वास गवाँ बैठते हैं।

स्त्री यदि अपने पति के प्रति एकनिष्ठ हो तो वह सती परलोक में भी अपने पति से जा मिलती है। इसी प्रकार अपने इष्टदेवता पर एकनिष्ठ भक्ति हो तो ईश्वरदर्शन होता है।

सत्य

हृदय के भीतर भक्तिभाव रखो, कपट चतुराई छोड़ दो। जो सांसारिक कर्म करते हैं, दफ्तर में काम या व्यापार करते हैं, उन्हें भी सत्यनिष्ठ होना चाहिए। सच बोलना कलियुग की तपस्या है।

सत्यवादी सत्यनिष्ठ हुए बिना सत्यस्वरूप भगवान् की प्राप्ति नहीं हो सकती। सत्यवचन के प्रति दृढ़ निष्ठा होनी चाहिए। सत्य को दृढ़ता से पकड़े रहने पर ईश्वर लाभ होता है।

मिथ्या का कोई भी रूप अच्छा नहीं। मिथ्या वेष भी अच्छा नहीं। यदि तुम्हारा मन तुम्हारे वेष के अनुकूल न हो तो उस मिथ्या वेष से महान् अनर्थ हो जाता है। झूठ बोलते बोलते या बुरे काम करते–करते धीरे–धीरे मनुष्य का भय चला जाता है और वह पाखण्डी बन बैठता है।

एक ऋणग्रस्त व्यक्ति ने अपने साहूकार से बचने के लिए पागल का स्वाँग रचा था। डाक्टर, वैद्य कोई उसे सुधार नहीं पा रहे थे। उसका पागलपन बढ़ता ही जा रहा था। अन्त में एक अनुभवी वैद्य ने बीमारी का सच्चा कारण ताड़ लिया और उसे डाँटते हुए कहा, "महाशय, यह आप क्या कर रहे हैं ! सावधान हो जाइए—कहीं पागल की नकल करते–करते आप सचमुच पागल न बन जाएँ। इस थोड़े ही समय के अन्दर आपके दिमाग में कुछ–कुछ सही गड़बड़ी के लक्षण भी दिखाई देने लगे हैं।" यह सुनकर वह व्यक्ति होश में आया और उसने पागलपन का ढोंग करना छोड़ दिया। सदा किसी भाव की नकल करते रहने से मनुष्य धीरे–धीरे वास्तव में उसी भाव को प्राप्त हो जाता है।

ब्रह्मचर्य

जैसे काँच में यदि पारा लगा हुआ हो तो उसमें चेहरा दिखाई देता है वैसे ही ब्रह्मचर्य पालन के द्वारा वीर्यधारण करने से ब्रह्मदर्शन हो सकता है। ब्रह्मचर्य पालन किए बिना, वीर्य धारण किए बिना सूक्ष्म आध्यात्मिक तत्वों की धारणा नहीं होती।

शुकदेव आदि ऊर्ध्वरेता थे, उनका रेतःपात कभी नहीं हुआ। कुछ धैर्यरेता भी होते हैं। इनका पहले रेतःपात हुआ है परन्तु बाद में इन्होंने अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन कर वीर्यधारण किया है। यदि कोई बारह वर्ष तक धैर्यरेता रहे तो उसमें एक विशेष शक्ति उत्पन्न होती है। भीतर एक नई नाड़ी पैदा होती है—उसे मेधानाड़ी कहते हैं। वह नाड़ी पैदा होने से मनुष्य सब बातें स्मरण में रख सकता है, सब कुछ जान सकता है।

बारह वर्ष अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करने पर मनुष्य की मेधानाड़ी खुल जाती है। तब उसकी बुद्धि तथा अतिसूक्ष्म तत्वों की भी धारणा करने में समर्थ हो जाती है। इस प्रकार की शुद्ध सूक्ष्म बुद्धि के द्वारा ही ईश्वर के दर्शन होते हैं।

वीर्यपात करने से शक्तिक्षय होता है। स्वप्नदोष से अपने आप कुछ निकल जाता है, उसमें हानि नहीं। वह खाद्य ईश्वर को जानकर संसार में रहने से अपनी ब्याहता पत्नी के साथ प्रायः सांसारिक सम्बन्ध नहीं रहता। दोनों भक्त बन जाते हैं और सदा ईश्वर सम्बन्धी वार्तालाप करते हैं, ईश्वरीय प्रसंग में ही मग्न रहते हैं। वे दोनों भक्तों की सेवा करते हैं। सर्वभूतों में ईश्वर विद्यमान है, वे उन्हीं की सेवा करते हैं।

* * *

तुम पर तन मन वारूं

लेखक—ब्र० बृजमोहन वाशिष्ठ

विजय दशमी का विजय पर्व है,
शुभ दिन आज हमारा।
गुरूदेव ने प्रकट होकर,
कल्याण किया हमारा।
योग की ज्योति जगाकर प्रभु ने,
जग में धूम मचाई।
गीता ज्ञान दिया द्वापर में,
फिर से वही सुनाई।
वंशी मोर मुकुट को छोड़ा,
पण्डित वेष बनाया।
गुरु रूप को धारा तुमने,
सब को योग सिखाया।
योगाधीश योगेश्वर तुम हो,
तुम सृष्टि के स्वामी।
सब देवन के देव तुम्हीं हो,
मैं पतिवन में नामी।
बृजमोहन पर दृष्टि रखना,
आरत नाद पुकारूँ।
'सिद्धगुफा की ज्योति तुम हो,
तुम पर तन मन वारूँ।

* * *

योगी साधक का संस्कार भुगतान

केशवदेव उपाध्याय, वाराणसी

हमारे आदरणीय गुरुभाई श्री ताराचन्द्र शर्मा जी आराध्य देव योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की अवतार स्थली श्री अलुपुर धाम के मूल निवासी हैं। इनका पैतृक मकान भी श्री गुरुदेव की अवतार स्थली से मात्र पच्चीस–तीस कदम की दूरी पर है। बाल्यकाल में श्री ताराचन्द्र की शादी हो गयी थी एवं मात्र दो तीन वर्षों में इनकी धर्म परायणा पत्नी परलोक सिधार गईं। पत्नी के परलोक गमन के बाद इनके अन्दर कुछ वैराग्य का भाव जग गया। पत्नी परलोक वासी होने के मात्र पैंतालीस दिन बाद ये श्री गुरुदेव के पास आ गये एवं प्रार्थना करने लगे कि प्रभुजी हमें भी योगी बनाओ। श्री सद्गुरुदेव जी महाराज उन्हें सान्त्वना देते रहे कि लल्ला मैं तुम्हें योग साधना अवश्य बतलाऊँगा व तुम यदि साधनाओं को करते रहे तो अवश्य–अवश्य योगी बन जाओगे। उस समय कुछ महीनों तक ये अनवरत श्री सद्गुरुदेव जी महाराज की खूब अच्छी प्रकार से सेवा किया करते थे। इन्होंने श्री गुरुदेव भगवान से प्रार्थना की कि महाराज जो मेरे परिवार वाले मुझे शादी करने का दबाव डाल रहे हैं, परन्तु मैं ब्रह्मचारी रहकर ही योग की साधना करना चाहता हूँ। आराध्य देव जी ने उनसे कहा कि लल्ला कल सबेरे इसका निर्णय करेंगे। दूसरे दिन प्रातःकाल जब श्री गुरुदेव जी महाराज अखिल लोक पावन योग योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज की आरती–पूजा, गीता–पाठ व गीता प्रवचन से खाली हुए तो आदरणीय भाई श्री ताराचन्द्र ने प्रार्थना की महाराज जी अब तो हमसे योग साधना शुरू कराइये। श्री गुरुदेव ने कहा कि ठीक है, आज तुम्हारे सम्बन्ध में विचार करते हैं। इतना कहकर वे अपने श्री गुरुभवन में चले गये एवं उसका दरवाजा बन्द कर लिया। उस समय आदरणीय भाई श्री ताराचन्द्र जी का सवाई धाम पर निवास करते हुये करीब महीने भर का समय व्यतीत हो गया था। श्री गुरुदेव ने करीब आधे घंटे बाद अपने श्री गुरुभवन का दरवाजा खोला व उस समय सेवा में उपस्थित ब्रह्मचारी से कहा कि ताराचन्द्र को जो श्री सिद्धगुफा में बैठा है-जल्दी बुला लाओ। आदरणीय ब्रह्मचारी जी दौड़े–दौड़े श्री सिद्धगुफा में गये एवं आदरणीय भाई श्री ताराचन्द्र को बुला लाये। आते वक्त भाई श्री ताराचन्द्र जी काफी उत्साहित एवं आनन्दित हो रहे थे कि आज हमें श्री गुरुदेव श्री योगसिद्ध की दीक्षा देकर योग साधना आरम्भ करा देंगे। उन्होंने श्री गुरुदेव के चरणों में प्रणाम निवेदित किया। श्री सद्गुरुदेव जी महाराज ने अपने मुखार बिन्दु से मधुर मुस्कान के साथ कहा,'लल्ला ताराचन्द्र। मैंने तो विचार किया था कि तुम्हें योग दीक्षा देकर इसी जन्म में तेरे संस्कारों का भुगतान करा दूँगा। परन्तु तुम्हारे पीछे तो संस्कारों की बहुत बड़ी लाइन दिखलाई दे रही है। उसका भुगतान नितान्त आवश्यक है। इतना कहकर श्री गुरुदेव भगवान ने अपने कर कमलों से प्रसाद की डलिया उठाई फल का प्रसाद एवं पुष्प का प्रसाद देकर कहा कि इसे अभी खा जाओ। आज ही आश्रम में भोजन करके अपने गाँव पहुँच जाओ। कल तुम्हारी शादी पक्की करने कुछ लोग आयेंगे। अपने पूज्य पिताजी से कहना कि वे तुम्हारी शादी वहीं तय कर दें।

"आये थे हरिभजन को, ओटन लगे कपास," वाली कहावत चरितार्थ हुई। श्री गुरुदेव भगवान की शरण में आये थे इस नीयत से कि योग दीक्षा ग्रहण करने के बाद ब्रह्मचारी रहकर योग साधना करूँगा, एवं श्री गुरुदेव की आज्ञा ठीक इसके विपरीत हो गई। उन्होंने श्री चरणों में प्रार्थना की कि गुरूदेव मैं शादी नहीं करूँगा, ब्रह्मचारी रहकर ही साधना करूंगा। श्री गुरुदेव जी महाराज ने अपने मुखारबिन्दु से कहा, लल्ला ताराचन्द्र तुम मुझे अपना गुरू मानते हो कि नहीं। आदरणीय भाई ताराचन्द्र ने प्रार्थना की प्रभो ! मैं आपको अपना गुरू तो मानता हूँ, इसमें कौन पूछने की बात है। इसके बाद श्री गुरुदेव जी महाराज ने कहा कि यदि तुम मुझे मानते हो तो तुम्हारा लौकिक एवं पारलौकिक परम कल्याण इसी में है कि तुम हमारी आज्ञा मानकर शादी करो। शादी के बाद तुम्हें व तुम्हारी धर्मपत्नी को साथ ही योग दीक्षा देकर साधना कराऊँगा। आरती एवं विनीत भाव से हाथ जोड़कर श्री ताराचन्द्र जी ने श्री चरणों में प्रार्थना की कि मेरी भी एक प्रार्थना है आप स्वीकार करो तो मैं यह शादी करूँगा। श्री गुरुदेव ने कहा, बतलाओ लल्ला। तुम्हारी क्या शर्त है। इन्होंने हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि यदि आप बारात में चलना स्वीकार करेंगे तभी मैं शादी करूँगा। अपनी मनोहारी मुस्कान के साथ श्री प्रभुजी ने कहा कि मैं तुम्हारी बारात में चलूँगा। रात में रहूँगा परन्तु बारात में नहीं, गाँव में किसी मंदिर पर नदी के किनारे। केवल आशीर्वाद देने बारातियों के बीच आऊँगा। इतना कहने के बाद श्री मुख ने आदेश दिया कि श्री प्रभु जी का भोग लग चुका है। तुम भोजन करके तत्काल गाँव निकल जाओ एवं अपने पिताजी से शादी का मुहुर्त तय करके हमें यथाशीघ्र पत्र द्वारा सूचित करना। श्री ताराचन्द्र जी ने श्री गुरुदेव भगवान की आज्ञाओं का अक्षरशः पालन किया एवं मुहुर्त तय हो जाने पर श्री प्रभुजी को पत्र द्वारा सूचित किया। श्री गुरुदेव ने उनके पत्र का जबाव भी वापसी डाक से दे दिया कि लल्ला तुम मेरा इन्तजार कहीं भी एवं कभी भी मत करना, परन्तु मैं तुम्हारी शादी में अवश्य ही आऊँगा। तुम लोगों को शादी बाद आशीर्वाद अवश्य दूँगा। पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार शादी हुई एवं हमारे श्री गुरुदेव आशीर्वाद देने वालों में अग्रगण्य रहे। इसके बाद धीरे से ताराचन्द्र जी के कान में बोले कि गाँव के बाहर तालाब है तथा जहाँ शंकर भगवान का मंदिर है, वहीं रात्रि निवास करूँगा। सवेरे बारात विदा होने के आधे घंटे पूर्व सवांई धाम की यात्रा आरम्भ कर श्री सवांई धाम पहुँच जाऊँगा। आदरणीय भाई ताराचन्द्र जी की शादी जिस गाँव में हुई है, उस गाँव का नाम हाट गाँव है। यह गाँव हिन्दुओं की तीर्थस्थली भी है। गाँव में एक बहुत बड़ा सरोवर है। उस सरोवर के तीन तरफ के घाट पक्के सीढ़ियों के बने हैं एवं एक घाट मवेशियों के पानी पीने के लिये सीमेण्ट कंक्रीट से बनाया गया है। पवित्र तालाब के एक घाट पर भगवान शंकर की प्रतिमा प्रतिष्ठापित कर एक बड़ा ही भव्य एवं मनोहारी मन्दिर बना हुआ है। वैसे तो प्रत्येक शिवरात्रि के दिन सैकड़ों की संख्या में नर–नारी पूजा–पाठ, मन्त्र–जाप आदि करते हैं परन्तु महाशिवरात्रि के दिन बहुत बड़ा मेला लगता है, एवं उस दिन हजारों आदमियों की भीड़ इस मंदिर पर होती है। लोकधारणा है कि इस मन्दिर में

आरती पूजा एवं सेवा करने वालों की मनोकामना अवश्य पूर्ण होती है। इसके कई जाग्रत प्रमाण आज भी मौजूद हैं। जिस किसी ने भी इस पवित्र मंदिर में आरती पूजन का कार्यक्रम चलाया, वर्ष पूरा होने से पहले उसकी मनोकामना अवश्य–अवश्य पूरी हो गयी।

आदरणीय भाई ताराचन्द्र जी एवं उनकी नवविवाहिता धर्मपत्नी को अपना आशीर्वाद सर्वप्रथम प्रदान करके आराध्यदेव जी महाराज हाट गाँव के बाहर स्थित पवित्र सरोवर पर आ गये, जिसके सभी घाट पक्के बने थे एवं जिसके एक किनारे भगवान शंकर का बड़ा ही भव्य एवं मनोहर मंदिर बना हुआ है। मंदिर सरोवर की पूर्व दिशा में बना है एवं सरोवर की उत्तर दिशा वाले घाट पर श्री गुरूदेव जाकर रात्रि करीब एक बजे श्री आराध्य देव जी महाराज चन्द ने मिनटों के लिये विश्राम किया एवं फिर अपना पूरा पोशाक एवं जूता–छड़ी उसी घाट की ऊपरी सीढ़ी पर रखकर सरोवर में जल समाधि की स्थिति में बैठ गये। श्री गुरूदेव रात्रि भर जल समाधि में ही रहे। प्रातः करीब पाँच बजे शिव मंदिर का पुजारी पूजा के बर्तन साफ करने सरोवर पर पहुँचा तो उसने देखा कि सरोवर की ऊपरी सतह पर उत्तर तरफ धोती–कुर्ता–चादर–छड़ी एवं जूता आदि रखा हुआ है, उसने करीब आधे घंटे तक इन्तजार किया कि जिसका यह सामान है अब आ रहा है, अब आ रहा है, परन्तु आधे घंटे तक कोई नहीं आया। चार पाँच बार उसने जोर–जोर से यह आवाज लगायी कि भाई जिसका कपड़ा व सामान रखा है आकर ले जाय वरना कोई दूसरा उठा ले जायेगा। परन्तु कोई नहीं आया। अब शिव मंदिर के पुजारी को पूरा विश्वास हो गया कि ऐसा लगता है कि गाँव में आयी बारात का कोई आदमी अपने कपड़े निकाल कर पवित्र सरोवर में स्नान करने के लिये प्रवेश किया एवं सरोवर की असीमित गहराई का उसे आभास नहीं था, अतः सरोवर में डूब गया। श्री शिव मंदिर का पुजारी काफी व्यग्र एवं परेशान हो गया। उसने सर्वप्रथम बारात में जाकर कहा कि कोई बाराती सरोवर में डूबकर मर गया है। उसके बाद उसने हाट गाँव के प्रधान से कहा कि सरोवर में डूबकर कोई मर गया एवं साथ ही साथ उसने पुलिस चौकी पर जाकर यह सूचना दे दी कि मंदिर वाले सरोवर में कोई डूबकर मर गया है। करीब प्रातःकाल साढ़े छः बजे तक सरोवर पर सैकड़ों की संख्या में प्राणी एकत्र हो गये। इसके अलावा काफी संख्या में बाराती भी पवित्र सरोवर पर एकत्र हो गये। उपस्थित सभी समुदाय यह निर्णय नहीं कर पाया कि सरोवर में कौन डूबकर मर गया है। जिसके कपड़े किनारे पड़े हैं।

अन्ततोगत्वा सबकी राय यह बनी कि गोता खोर बुलाकर एवं जाल डालकर मरने वाले प्राणी का शव सरोवर से बाहर निकाला जाय। जाल मँगा लिया गया एवं जाल डालने की पूरी तैयारी भी हो गई। गोताखोरों को सूचना दे दी गई एवं उनके प्रातः साढ़े नौ बजे तक आने की उम्मीद थी। इस हाट गाँव में रहने वाले एक साधक एवं एक दम्पत्ति हमारे गुरू भाई–बहन हैं। हमारे उस साधक गुरूभाई को जब इस बात की जानकारी हुई कि शिवमंदिर वाले सरोवर पर एक आदमी डूबकर मर गया है एवं उसे तालाब से निकालने की तैयारी चल रही है तथा वहाँ

काफी जनसंख्या एकत्रित है तो वे भी उस तालाब पर पहुंच गये। वहाँ जाने पर उन्हें पता चला कि जो आदमी डूब कर मरा है। उसका सब सामान किनारे रखा है तो वे वह सामान देखने गये। अपने पूज्य आराध्य श्री सद्‌गुरूदेव जी महाराज के चिरपरिचित सामान देखते ही उन्होंने कहा कि कुछ करने की आवश्यकता नहीं है। न तो जाल डाला जायेगा एवं न गोताखोरों को परेशान करने की आवश्यकता है। ये सभी सामान, जूता, छड़ी व कपड़े परम सिद्ध योगेश्वर हमारे गुरूदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के हैं। एवं उन्होंने जल समाधि लगाई होगी। उनके डूबकर मरने की बात सोचना तो महान मूर्खता का परिचायक है। दूसरे को मृत्यु से रक्षा करने वाला एवं दूसरों को अभय प्रदान करने वाली हस्ती स्वयं पानी में डूबकर मरेगी यह आप लोगों का मतिभ्रम प्रदर्शित करता है। उसने फिर उपस्थित समुदाय से प्रार्थना की कि आप लोग सरोवर के घाट से करीब पचास गज की दूरी पर चले जायें। कोई भी आदमी घाट के आस–पास न रहे। उसके बाद मैं प्रार्थना करता हूँ श्री गुरूदेव भगवान जल समाधि से बाहर आयेंगे। हमारे इस गुरूभाई की प्रार्थना सुनकर तीन चौथाई समुदाय तो तालाब से दूर हो गया परन्तु एक चौथाई समुदाय पवित्र सरोवर के घाट के आस–पास ही रहा। हमारे इस आदरणीय गुरूभाई ने हाथ जोड़कर ज्योंहि मौन प्रार्थना आरम्भ की, श्री गुरूदेव जी महाराज सरोवर के नीचे की सतह से पानी की सतह पर आ गये एवं उनका पूरा मुख मण्डल केवल दिखलाई दिया। मात्र आधा मिनट ही उनके गर्दन तक का ही मुखमण्डल पानी से बाहर दिखलाई दिया एवं सरोवर पर अपनी दयालुता भरी करूण कृपा सभी तरफ बरसाकर वे फिर गहरे जल में चले गये। सरोवर के आस–पास उपस्थित सभी जन समुदाय ने यह दृश्य देखा। हमारे आदरणीय गुरूभाई की प्रसन्नता एवं आनन्द का तो कहना ही क्या था ? उसने हाथ जोड़कर सभी समुदाय से प्रार्थना किया कि सभी लोग सरोवर के घाट से पचास गज की दूरी पर चले जायें वरना हमारे गुरूदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज चल समाधि से बाहर नहीं आयेंगे।

हमारे इस आदरणीय गुरूभाई की प्रार्थना का इस बार प्रभाव गहरा पड़ा। इसके कारण सभी उपस्थित जन समुदाय पचास गज की दूरी के बाहर के क्षेत्र में चला गया। इसके बाद हमारे आदरणीय भाई ने मौन प्रार्थना की एवं श्री गुरूदेव तत्काल जल की उपरी सतह पर पद्‌मासन पर बैठे हुए दिखलाई दिये। हमारे भाई ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि हे सर्व समर्थ योगिराज आप पवित्र सरोवर से बाहर आ जावें, सभी उपस्थित जन समुदाय अनिष्ट की चिन्ता से ग्रस्त हैं। योग योगेश्वर श्री गुरूदेव जी महाराज पद्‌मासन पर बैठे हुए उस किनारे आ गये जहाँ उनका कपड़ा व सामान रखा था एवं फिर तालाब से बाहर आ गये। तालाब से बाहर आकर उन्होंने अपने कपड़े पहने, जूता पहना, चादर को बायें कन्धे पर एवं हाथ में छड़ी धारण की। हमारे इस आदरणीय भाग्यवान गुरूभाई ने जमीन पर लेटकर श्री गुरूदेव के चरणों में साष्टांग प्रणाम किया। दूर–दूर खड़े जन समुदाय ने श्री गुरूदेव के स्थूल शरीर को आश्चर्य से देखा एवं यह भी देखा कि हमारा आदरणीय गुरूभाई योगिराज जी के श्री चरणों में साष्टांग कर रहा है।

सरोवर के आस–पास चारों दिशाओं में काफी दूर–दूर खड़े जन समुदाय ने योगेश्वर श्री गुरूदेव के चरण कमलों में साष्टांग प्रणाम निवेदित करने की नियत से उनकी तरफ दौड़ना आरम्भ किया हाँफते, काँपते सब लोग वहाँ जल्दी पहुँचना चाहते थे जहाँ आराध्य देव श्री सद्‌गुरूदेव जी महाराज विराजमान थे। इसके बाद दूसरा महान आश्चर्य घटित हो गया। मात्र दो तीन मिनट में ही हमारे आपके श्री गुरूदेव जी महाराज जो कालचक्र एवं जगचक्र को एक साथ चलाने वाले सिद्ध योगिराज हैं, वहीं से अन्तर्ध्यान हो गये। कुछ मिनटों में सभी दर्शनार्थी वहाँ पहुँच गये, जहाँ से श्री सद्‌गुरूदेव जी महाराज अन्तर्ध्यान हुए थे। एवं जिसकी बगल में हमारे आदरणीय श्री गुरूभाई जी विराजमान थे। सभी वहाँ पहुँचने वाला समुदाय पश्चाताप कर रहा था कि हम सभी न तो अच्छी प्रकार से उनके स्थूल दर्शन कर पाये एवं न उन्हें साष्टांग प्रणाम ही कर पाये। हमारे आदरणीय भाई ने उन्हें कई प्रकार से सान्त्वना दी एवं समझाया कि हमारे गुरूदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज जो पूर्ण योगेश्वर हैं, सबके मनोभावों को देख रहे हैं। आप लोग पूर्ण श्रद्धा भाव से यह स्वीकारते हुए कि वे आपका प्रणाम करना देख रहे हैं, इस पवित्र स्थान पर जहाँ वो विराजमान थे, साष्टांग प्रणाम करें। आदरणीय भाई की बात सुनकर सभी लोगों ने उस पवित्र धरातल पर साष्टांग प्रणाम किया। कुछ पवित्र व उच्च श्रेणी के श्रद्धाभाव वाले जन समुदाय को श्री गुरूदेव का स्पष्ट आशीर्वाद भी सुनाई दिया एवं उन लोगों ने हमारे भाई जी से बतलाया कि सचमुच आपके श्री गुरूदेव घट–घट की जानने वाले हैं एवं उनका आशीर्वाद हमें स्पष्ट सुनायी दिया।

तदन्तर उस गाँव के काफी नर–नारी जनों ने अपनी सुविधानुसार श्री सिद्धगुफा सवांई धाम आकर श्री चरणों में निवास किया एवं आराध्य देव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज से योग दीक्षा ग्रहण कर अपना जीवन सफल बनाया तथा आज भी उनकी आज्ञाओं का पालन कर अपना जीवन योगमय तरीके से जी रहे हैं।

परम आदरणीय पण्डित ताराचन्द शर्मा जी ने उसके बाद श्री गुरूदेव की चरण–शरण में पूरी योग दीक्षा ग्रहण की जैसा कि श्री सद्‌गुरूदेव जी महाराज ने पूर्व में उन्हें आज्ञा दी थी। आज अनाथनाथ की करूण–कृपा से भाई श्री ताराचन्द जी का पूरा परिवार सुखमय एवं आनन्दमय जीवन व्यतीत कर रहा है। उनके चार लड़कों ने सभी अपने–अपने काम संभाल लिये हैं। श्री सद्‌गुरूदेव भगवान की स्मरण कर वे सभी कार्य करते हैं। भाई श्री ताराचन्द जी का श्री गुरूदेव के चरण कमलों में अनन्य भाव है एवं श्री अलुपुर धाम का दर्शन लाभ करने के लिये इस धाम पर आने वाले सभी प्राणी का ये हर प्रकार से ख्याल रखते हैं। धन्य हैं ऐसे योगिराज श्री गुरूदेव एवं धन्य हैं उनके ऐसे आज्ञापालक शिष्य। किसी भक्त ने ठीक ही कहा है–

"देखा है जलवा तेरे द्वार का,
तेरा द्वार छोड़ क्यों जाऊँ द्वारका"।।

* * *

यह जगत प्रभु की क्रीड़ा स्थली

पूज्यपाद श्रीप्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी के अमृत वचन

यो दुर्विमर्शपथया निजमाययेदं
सृष्ट्वा गुणान् विभजते तदनुप्रविष्टः।
तस्मै नमो दुरवबोधविहारतन्त्र
संसारचक्रगतये परमेश्वराय।।

यह जगत् प्रभु की क्रीड़ा स्थली है। इसमें वे नाना रूपों से नाना भाँति की क्रीड़ाएँ करते हैं। सृष्टि के आदि में जब कुछ नहीं था, तब उन्होंने अपनी कमल के समान बड़ी-बड़ी आँखों से चारों ओर देखा। सर्वत्र शान्ति थी, सर्वत्र शून्य का साम्राज्य था, वे सोते-सोते ऊब गये थे। योगनिद्रा से भी उन्हें थकान सी मालूम पड़ने लगी। अब उन्हें खेल की इच्छा हुई। स्वतस्तृप्त आत्मारमण को भी इच्छा, यह कैसी विपरीत बात है। यही तो बात है। वे ही अनुकूल, प्रतिकूल सबके जनक हैं। उनके लिये न कोई कर्तव्य है, न अकर्तव्य। उनके लिये सभी अनुकूल हैं और सभी प्रतिकूल।

देखते ही देखते खेल का साज-सामान बनने लगा; क्योंकि क्रीड़ा एकत्व में नहीं होती। खेलने के लिये अनेक चाहिये। वह एक से अनेक हो गया। उसने अपने बहुत से रूप बना लिये, वही क्रीड़ा का साज सामान बन गया। उसी ने खेलने वालों के अनेक रूप धारण कर लिये। बस, खेल आरम्भ हो गया।

दार्शनिकों ने उसमें अनेक तर्क लगाये। वैज्ञानिकों ने उसमें सूक्ष्मता का अन्वेषण किया। विद्वानों ने उसकी क्रीड़ा के ऊपर अनेकों शास्त्र बनाये। वह हँसता रहा, मुस्कराता रहा, कुछ बोला नहीं। उसने इच्छा की, आकाश बन गया। उसमें वायु चलने लगी, प्रकाश हो गया। गरमी लगने लगी, जल बन गया। गीला हो गया, पृथ्वी बन गयी—यही तो क्रीड़ा क्षेत्रों में होता है। अजी ! पहले प्रकाश क्यों आया ! चाँदनी ही पहले क्यों तानी गयी। छिड़काव बाद में क्यों हुआ। इसी पर लोग माथापच्ची करते हैं, करें। खिलाड़ी को ये प्रश्न व्यर्थ से लगते हैं, उसे इनसे कोई प्रयोजन नहीं।

खेलने वाले ने रखी हुई गेंद स्वाभाविक उठा ली है। अपना दुपट्टा उठाकर ओढ़, टोपी लगा ली, जूती पहन ली, खेलने को चल दिया। उसके सब काम स्वाभाविक हैं, किंतु विवेचना करने वाले उसी पर तर्क करते हैं। पहले दुपट्टा बायें हाथ से ही क्यों उठाया। टोपी तनिक टेढ़ी क्यों लगायी, लगाकर चार कदम बायीं ओर क्यों चला ! बस, ये ही प्रश्न इतने जटिल बन जाते हैं कि लोग इन्हीं पर मस्तिष्क खपाते रहते हैं। अरे ! यह तो स्वभाव है, क्रीड़ा करने वाले की इच्छा है।

इस जगत् को हम भगवान् की क्रीड़ाभूमि और समस्त प्रपंच को उनके खेल का साज-सामान मान लें तो न फिर कोई झंझट है, न वाद-विवाद है। भगवान् अनेक तरह से खेल रहे हैं। उनकी क्रीड़ा में न कोई सम्भव है, न असम्भव। आज लोग गर्व करते हैं—हमने इंजन बनाया, तार बनाये, हम यह कर देते हैं, यह कर देते हैं, मैं कहता हूँ—तुम पृथ्वी का

एक कण बना सकते हो ! जल की एक बूँद बना सकते हो ! विद्युत की एक किरण तैयार कर सकते हो ! वायु का एक श्वास उत्पन्न कर सकते हो ! नहीं, तो सब व्यर्थ है। माया में क्या सम्भव, क्या असम्भव ! सभी सम्भव हैं, सभी असम्भव हैं।

वे हरि खेल रहे हैं। आदिशक्ति महामाया के साथ वे स्वयं नाचते हैं। महामाया ताली बजाकर उन्हें नचा रही है।

नाचे नँदलाल नचावे वाकी मैया।

वे स्वयं नाचते हैं और चराचर प्रकृति के साथ क्रीड़ा करते हैं। कभी स्वयं बैठ जाते हैं—सबको नचाते हैं।

सबहिं नचावत राम गुसाईं।
बँध्यो कीर मर्कट की नाईं।।

नाचना—नचाना, गाना—गवाना—इसी का नाम रास है। यह रास अनादिकाल से हो रहा है, अनन्तकाल तक होता रहेगा। इसका ना आदि है, न अन्त, न मध्य, न अवसान। चल रहा है, चलता रहा है, चलता रहेगा। हम सब उसी की प्रेरणा से कर्म कर रहे हैं, क्रीड़ा कर रहे हैं। क्रीड़ा सुख के लिये होती है—आनन्द के लिये होती है। हम प्रतिदिन प्रत्यक्ष देखते हैं—खेल में हमें सभी वस्तुएँ प्रसन्न करने के लिये ही होती हैं। विदूषक आकर हँसी की बातें करता है, हमें प्रसन्नता होती है, हम हँसने लगते हैं। फिर एक नायिका आकर रोती है, तड़फड़ाती है, मूर्तिमयी करुणा का रूप दिखाकर दर्शकों को रुला देती है। सबकी आँखों से आँसू बहने लगते हैं। फिर भी हम आनन्द से उछल पड़ते हैं, वाह-वाह ! बड़ा सुन्दर अभिनय किया। कमाल कर दिया, आज तो बड़ा आनन्द आया। कभी किसी का सिर कटता है, हम ताली बजा देते हैं। किसी पर विपत्ति आती है, हम उत्सुक होकर उसका परिणाम देखने लगते हैं। सारांश यही है कि नाटक में जो भी हो—सभी में हमें सुख है, सभी में आनन्द है। दुःख तभी होता है, जब पात्र अपना अभिनय तत्परता से नहीं करते। इसी तरह यह जगत् तो आनन्द की जगह है। खेलने का स्थान है, रंगस्थली है, क्रीड़ा का क्षेत्र है, इसमें जो दुःखी होते हैं, चिन्तित होते हैं, व्यग्र बने रहते हैं, उन्होंने अपने को ही कर्ता मान रखा है, वे स्वयं इस नाटक के दर्शक न बनकर अपने को सूत्रधार समझे बैठे हैं। अरे ! सूत्रधार तो वे ही हरि हैं। वे जो भी कुछ करते हैं, जिससे जो भी कुछ करा रहे हैं, सब वे ही करा रहे हैं। तुम उनकी क्रीड़ा में से अपनापन हटा लो, अपने को सूत्रधार के सिंहासन से हटाकर दर्शकों की श्रेणी में कर लो। तब तुम्हें नाटक का असली सुख मिलेगा।

सूत्रधार तो नाटक का निर्माता है। उसके लिये न कोई हर्ष की बात है न विस्मय की। उसी ने तो नाटक का निर्माण किया है। वह उसका आदि, मध्य, अन्त—सब जानता है। तुम उसकी बराबरी मत करो, नहीं तो दुःखी होगे। तुम तुम्हीं हो, वह वही है। तुम खेल देखो, आनन्द करो, सुखी रहो या उसकी इच्छा से तुम भी खेल करने लगो। बस, आनन्द-ही-आनन्द है, सुख-ही-सुख है। खेल को खेल ही

समझो, जहाँ इसमें सत्य की भावना हुई कि तुम दुःखी और अशान्त हुए। सूत्रधार ही सत्य है, शेष सब तो उसी का निर्माण किया हुआ खेल है। उसमें न सत्यता है, न असत्यता, सत्यता तो है ही नहीं; क्योंकि वह बनता-बिगड़ता रहता है। असत्यता भी कहें तो कैसे कहें, क्योंकि सत्यस्वरूप की बनायी सभी वस्तुएँ सत्य हैं, सत्य से असत्य का निर्माण हो नहीं सकता। अतः तुम इसकी सत्यता-असत्यता के झमेले में पड़ो ही नहीं। इसे तो सूत्रधार पर छोड़ दो। तुम तो खेल को खेल समझो और सदा ठहाका मारकर हँसते रहो। खूब हँसो, हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाओ। जोर से हँसो, कहकहा मारकर हँसो, हँसते-हँसते पेट में बल पड़ जायें, आँखों में आँसू आ जाय। खुलकर हँसो, लज्जा-संकोच छोड़कर हँसो, हँसने में भय मत करो। अरे ! हँसना, खेलना—यही तो क्रीड़ा में आनन्द है, यही तो मजा है। हँसी बिना खेल कैसा ? भगवान् हँसकर ही तो जीवों को फँसा लेते हैं ! **'हासो जनोन्मादकरी च माया'**—यही तो उनका जादू है। अतः जगत् में आकर जो रोया, वह हतभागी है, कर्महीन है। अरे ! रोना क्यों ? रोये वह, जिसकी नानी मर जाय। हमें तो हँसना है, हमारी नानी—महामाया आद्याशक्ति तो कभी मरती नहीं, वह तो अमर है। हमारे परम पिता भी उसके साथ खेलते हैं, फिर हमें रोने से क्या काम ?

अच्छा यदि रोना ही है तो हँसते-हँसते रोओ, कबीर की तरह रोओ ! कबीर ने गाया है— 'कबीर हँसना दूर कर रोने से कर प्रीत उनका रोना नानी करने का रोना नहीं है। नाटक में करुणा का रोना है, वह तो हँसी के लिये ही है, सुख के लिये ही है। अतः मन में कभी म्लानता न लाओ। इस क्रीड़ा को देखकर हँसो और ऐसे हँसो कि हँसते-हँसते ही विदा हो।

आप कहेंगे—जो क्रीड़ा कर रहे हैं, वे सभी को दिखायी तो देते नहीं। यह कैसी क्रीड़ा है ! वाहजी, वाह ! यह भी खूब प्रश्न किया। नाटककार तो छिपा ही रहता है, सूत्रधार रंगमंच पर कभी ही आता है। वह तो छिपकर समस्त नाटक का संचालन कर रहा है। यह कबड्डी का खेल नहीं है, आँख-मिचौनी का खेल है। श्रीकृष्ण ग्वालबालों के साथ खेल कर रहे हैं, 'दाम ! तू भी आ, सुदाम ! तू भी आ जा', सभी मिल जाते हैं। 'सब आँखें बंद कर लो, मैं वृन्दावन की कुञ्जों में छिप जाता हूँ। तुम सब मुझे ढूँढ़ना।' यह कहकर वृन्दावनचन्द्र वहीं पास की निकुंज में छिप गया। कोस-दो-कोस—सौ-दो-सौ गज वे नहीं गये। पास में, बिल्कुल पास में जहाँ से सबका ढूँढ़ना देख सकें, वे छिप गये। सब सखा उन्हें ढूँढ़ रहे हैं—कोई गहवरवन जाता है तो कोई भाण्डीरवन, कोई बेलवन तो कोई तमालवन। सब भटक रहे हैं, सब दौड़ रहे हैं। सूर्य-चन्द्र की तरह चक्कर लगा रहे हैं। किसलिये—अपने प्यारे को खोजने के लिये। क्यों खोज रहे हैं ! क्या प्रयोजन है ? अरे ! प्रयोजन क्या खेल है, आँख-मिचौनी की लीला है, यह तो छिपकर ही बन सकती है। स्वयं छिप गये हैं,

सखा उन्हें ढूँढ रहे हैं। कोई पूर्व जाता है, कोई पश्चिम की परिक्रमा करता है, कोई उत्तर के तीर्थों में भटकता है, कोई दक्षिण के वन उपवनों में खोज रहा है। श्यामसुन्दर समीप ही छिपे-छिपे हँस रहे हैं। किसी चतुर सखा की दृष्टि पड़ गयी, उसने जाकर पल्ला पकड़ लिया, क्यों जी ! यहाँ छिपे बैठे हो ! तब वह मुँहपर उँगली रखकर कहता है–'हरे ! चुप, बस, तू भी मेरे पास आ जा।' उसके लिये खेल समाप्त हो जाता है। उस सखा का दौड़ना–धूपना, घूमना, खोजना, चक्कर लगाना बंद हो जाता है। वह भी हँसता–हँसता दूसरों को देखता है।

एक छोटा सखा है, नन्हा-सा बच्चा है, बहुत दौड़ नहीं सकता। प्रत्येक निकुंज में जा नहीं सकता; क्योंकि वृन्दावन की कुंजें कटीली हैं और जमीन कंकरीली है। छोटा सखा एकदम शिशु है। वह रो पड़ता है, 'श्यामसुन्दर ! अब मैं तुम्हें स्वयं न खोज सकूँगा। तुम्हीं मेरे पास आ जाओ।' तब वह हँसता हुआ, मुस्कराता हुआ दौड़कर आकर अपनी नन्हीं–नन्हीं कोमल उंगलियों से उसकी आँखें बंद कर लेता है। 'अरे ! घबराता क्यों है ! रोता क्यों है, मेरे यार ! मैं कहीं दूर थोड़े ही गया हूँ।' 'मुझको क्या ढूँढ़े बंदे ! मैं तो तेरे पास में !' तब दोनों खिलखिलाकर हँस पड़ते हैं, खेल समाप्त हो जाता है।

इसी तरह जगत् में यह आँख मिचौनी का खेल हो रहा है। खेल को खेल समझने में ही सुख है, कल्याण है। यदि अपने पुरुषार्थ से तुम कन्हैया को ढूँढ सको तो भी खेल समाप्त हो जायगा। स्वयं पता न लगा सको तो जिसने पता लगा लिया है, उसी के बताये मार्ग पर चले जाओ या आर्त होकर उसे पुकारो, वह स्वयं दौड़ा आयेगा। उसका भी छिपने में कोई अन्य प्रयोजन नहीं, वह भी क्रीड़ा ही कर रहा है, विनोद के लिये ही छिपा है, उसे इसी में आनन्द है।

जिस प्रकार हमारे प्रभु को खेल प्रिय है, उसी तरह हम सब भी खेल को पसंद करते हैं। पिता के गुण पुत्र में आने ही चाहिये। आज सभी लोग खेल ही तो कर रहे हैं। कोई घर बना रहा है। कोई युद्ध कर रहा है। कोई पढ़ने जा रहा है। कोई व्यापार कर रहा है। कोई एक दूसरे को प्यार कर रहा है, एक दूसरे के लिये तड़प रहा है। बच्चों के खेल में भी तो यही सब होता है। बच्चे का एक मिट्टी का खिलौना फोड़ दीजिये–रोते-रोते घर भर को उठा देगा, घर भर में आफत मचा देगा। उसके लिये वह क्लेश उतना ही बड़ा है, जितना एक सम्राट को राज्य नष्ट होने पर होता है। बात दोनों एक ही है। साम्राज्य भी खिलौना है। मिट्टी का खिलौना भी खिलौना है। बच्चे को एक छोटा-सा सुन्दर खिलौना लाकर दे दीजिये। इतना प्रसन्न हो सकता है। दोनों ही बच्चे हैं, दोनों ही नादान हैं, दोनों ही खिलौनों से सुखी होने वाले हैं, दोनों ही खिलौने मायिक तथा नाशवान् हैं। हम बच्चों के खेल को देखकर उसकी हँसी उड़ाते हैं, उसकी अवहेलना करते हैं; किंतु स्वयं नहीं

समझते कि हम भी उसी तरह के बच्चे हैं। हम भी तो खेल ही कर रहे हैं।

यह जगत् त्रिगुणात्मक है। इसकी तीन धाराएँ सनातन हैं, तीनों ही उन्हीं की हैं। तीनों में वे ही खेल रहे हैं। जो सात्विक प्रकृति के लोग हैं, वे भजन, ध्यान, सत्संग और एकान्तवास में रहकर खेलते हैं, उन्हें संसारी पदार्थों की अपेक्षा नहीं। शरीर–निर्वाह के लिये कुछ चाहिये। उनकी लड़ाई किसी लौकिक पदार्थ के लिये नहीं है। वे आत्मसुख में रमण करने के लिये आत्मा का आलोचन–प्रत्यालोचन करते हैं। जो राजस प्रकृति के हैं, उन्हें सांसारिक ऐश्वर्य चाहिये। उसका राज्य हमें मिले, वह शासन ठीक नहीं करता, इसका प्रबन्ध जनमत के अनुकूल हो, वह शासक कमजोर है, उसे हटाकर दूसरा शासक बनाओ–इस प्रकार उनका सुख धन, ऐश्वर्य और विभूति के उपभोग में है। जो तामस प्रकृति के हैं, उन्हें विषयों में ही सुख है। यही उनका ध्येय है। वहाँ से लूट, यहाँ से चोरी कर, उसे मार, यह भोग कर, वह ला–बस, इसी में दस्युधर्म का पालन करते हुए संसारी भोग-पदार्थों में ही लिप्त रहना–उनका सुख भौतिक सुख है।

इसी तरह यह जगत् त्रिगुणात्मक है, तीनों गुणों के संयोग से यह चल रहा है। सभा–सम्मेलनों में यही सब होता है। तामस प्रकृति के लोग इकट्ठे होकर माँस, मद्य, व्यभिचार, चोरी, जुआ के षड्यन्त्र रचते हैं। सब परस्पर में इकट्ठे होकर इन्हीं के लिये वाद–विवाद तथा कलह करते हैं। उनके सम्मिलन का सार यही है। राजस प्रकृति के लोग मिलकर राजनीतिक मन्त्रणाएँ, राजस मनोरंजन तथा राजनीतिक व्याख्यान करते हैं। सात्विक प्रकृति के लोग भजन, कीर्तन, सत्संग, कथावार्ता, यज्ञ-याग आदि के महोत्सव करके उन्हीं में सुख की खोज करते हैं।

कुछ लोग दम्भ के लिये, कुछ मान-प्रतिष्ठा के लिये, कुछ लोग द्वेष से, ईर्ष्या से भी करते हैं, यह भावों का संकर है। कहीं कोई गुण बढ़ता है, कहीं कोई घटता है। हम कुछ भी खेल करें, यदि हमारा लक्ष्य परमार्थ है, यदि श्रीहरि हमारे खेल के ध्येय हैं तो यह खेल यथार्थ खेल है। यदि प्रभु का स्थान इन मायिक पदार्थों ने ले लिया है तो हम खेल ही खेल में भटक गये हैं। भगवान का नाम-कीर्तन, गुण-कीर्तन, लीला-कीर्तन यही सच्चा खेल है। इससे छिपे हुए भगवान् प्रकट हो जाते हैं और यह संसार हमें विस्मृत-सा हो जाता है। जब तक जगत् सत्य प्रतीत होता है, तब तक भगवान् नहीं दिखायी देते। जब भगवान् दीख जाते हैं, तब यह जगत् अपने–आप अदृश्य हो जाता है। इन मायिक पदार्थों के बिना–किसी प्रकार के नशा, अमल या मादक द्रव्य के बिना जहाँ भगवन्नाम-गुण-लीला-कीर्तन सुनते-सुनते हमें आत्मविस्मृति हो जाय, वही प्रभु का सच्चा खेल है। जो जीव कुछ काल के लिये भी उसमें सम्मिलित हो जाता है, वह उतने समय के लिये सांसारिक त्रिविध तापों से मुक्त हो जाता है। उसे एक अलौकिक आनन्द का अनुभव होने लगता है

जहाँ मनुष्यों को अहंकृति न हो या कम से कम हो, वहाँ प्रभु की प्रत्यक्ष लीला दिखायी

देती है। उस कार्य में जो भी जाता है, वह अपने को एक अलौकिक छाया में स्थित अनुभव करता है। काम सभी एक से हैं, सभी में प्रपंच की छाया है, सभी में वे ही पंचभूतों के पदार्थ हैं। वे ही पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश के बने खिलौने हैं, किंतु उनमें भाव ही प्रधान है। जहाँ जितनी ही कम अहंकृति होगी, वहाँ उतना ही अधिक रस होगा। सुदामा के तन्दुलों में क्या था, अपने पन का अभाव। मेरा यह उपहार कुछ नहीं है। प्रभु ने कहा– 'नहीं सब कुछ है।' दुर्योधन के यहाँ किस वस्तु की कमी थी, कितने पदार्थ थे, किंतु उसमें अहंकृति थी। इतने आडम्बर से सजाये हुए को भी प्रभु ने ठुकरा दिया। सब के घट–घट की बात वे प्रभु जानते हैं।

समस्त उत्सव, समस्त लीला, समस्त कार्यों का ध्येय यही है कि हम इन लौकिक पदार्थों से ऊपर उठकर प्रभु की ओर बढ़ सकें। यदि इन महोत्सवों में हमें निरन्तर भगवत् स्मृति होती रहती है, प्रत्येक काम में भगवान् का वरद हस्त दिखायी देता है, तब तो इन सबका करना सार्थक है। नहीं तो जैसे और कार्य, वैसे ही यह कार्य। सबका मूल भगवत्–स्मृति है, समस्त क्रीडा के आदि, मध्य और अन्त में हमें प्रभु ही प्रभु दिखायी दें तो हमें शोक, मोह– कुछ भी बाधा न दे सकेंगे। यदि हम भगवान् को भूलकर विषयों में आसक्त हो गये तब तो उनकी माया में भूल गये।

यह जो कुछ दिखायी दे रहा है, यह त्रिगुणात्मक जगत् सब उनकी लीला है, सब उनका खेल है, हम सब उनकी प्रेरणा से उनके आदेश से उन्हें खोज रहे हैं। जगत् के माने ही है जो चलता–फिरता रहे। यह चलना किसलिये है ? अपने प्रियतम की खोज के लिये, अपने जीवन–सर्वस्व से मिलने के लिये। जगत् के यावत् पदार्थ हैं, सब चल रहे हैं अनन्त की ओर। किसी न किसी दिन भूलते भटकते सब उसी के समीप पहुँचेंगे। सबका प्रयत्न उसी के लिये है। जान में, अनजाने में–सब उसी महासागर से मिलने दौड़ रहे हैं।

इसी क्रीडा को क्रीडा समझना ही उनकी ओर तेजी से बढ़ना है। इसमें सत्य का समावेश करना ही उनसे दूर भटकना है। इसलिये मेरे प्यारे बन्धुओं ! आओ और उस अनादि–अनन्त की खोज करो। हँसते–हँसते किलकारियाँ मारते हुए उन्हें खोजो। न खोज सको तो उनके लिये रोओ, आर्त होकर पुकारो। वे श्याम सुन्दर तुम्हें अपनी छाती से चिपका लेंगे और फिर तुम प्रत्यक्ष में उनका दर्शन–स्पर्श प्राप्त कर सकोगे। श्री कृष्ण ही नटनागर नट हैं। जगत् ही उनकी क्रीडा स्थली का रंगमंच है। चराचर जगत् के जीव ही उनके क्रीडा–प्रसंग हैं। वे उसमें अन्तर्यामी रूप से, गुरुरूप से, आचार्यरूप से, प्रतिमा रूप से, कभी–कभी प्रत्यक्ष रूप से भी प्रकट होकर खेलते हैं, फिर छिप जाते हैं। उनकी क्रीडा की ओर दृष्टि देने में ही कल्याण है, नहीं तो अकल्याण ही अकल्याण है। इसीलिये भगवान ने स्वयं अपने श्रीमुख से कहा है–

तस्माद् देहमिमं लब्ध्वा ज्ञानविज्ञानसम्भवम्।
गुणसंगं विनिर्धूय मां भजन्तु विचक्षणाः।।

* * *

भक्ति क्यों ?

(परिपूर्णानन्द वर्मा)

'धर्मनिरपेक्ष राज्य' की भावना को हमने बढ़ा–चढ़ाकर इस चरम सीमा पर पहुँचा दिया है कि अब जीवन की सारी बातें ही मानो धर्म निरपेक्ष सी हो गयी है। फलतः हमने चरित्र को भी धर्म से अलग कर दिया। आज हमारे देश मे चरित्र बड़ी शीघ्रता से गिरता जा रहा है। समाज में हर प्रकार के उपद्रव, भ्रष्टाचार और अनाचार इतने अधिक व्याप्त हो गये है कि वे उतने घृणिततम रूप में पश्चिमी सभ्यता के देशों में भी नही दिखायी पड़ते। आज हमारी बाह्यपूजा-उपासना भी सही रूप मे नहीं हो रही है। यह सब क्यों हो रहा है ? –इन सब बुराइयों की जड़ है– श्रद्धा भक्ति का अभाव। आज पिता–माता के प्रति, गुरु–शिक्षक के प्रति, वयोवृद्धों के प्रति तथा पूजा करते समय अपने देवता अथवा अपने इष्टदेव के प्रति एवं स्वयं अपने प्रति भी हममें भक्ति (आस्था) का अभाव हो गया है। इस पर विचार करने से प्रतीत होता है कि इसी अनास्था से आज चरित्र गिर गया है और गिरता जा रहा है। यहाँ प्रश्न हो सकता है कि 'चरित्र से क्या तात्पर्य है और उसका आस्था या भक्ति से क्या सम्बन्ध है ?' हमारा उत्तर है कि चरित्र का अर्थ है–आचरण या व्यवहार। 'हलायुधकोष' में कहा गया है–

'चरित्रं चरितं शीलं चारित्रं च समं स्मृतम्।'

चरित्र का एक अर्थ 'स्वभाव' भी होता है। यदि शील तथा चरित्र दोनों एक ही वस्तु हैं तथा स्वभाव के साथ मिली हैं तो शील बिना विनम्रता से प्राप्त नहीं हो सकता और विनम्रता केवल भक्ति से प्राप्त हो सकती है। साधारणतः श्रद्धेय के प्रति विनम्रतापूर्वक व्यक्त की गयी निष्ठा (आस्था) का नाम भक्ति है।

श्रीमद्भगवद्गीता के ९वें अध्याय में श्रद्धा (भक्ति) का बहुत सुन्दर विवेचन है। भगवान् ने कहा है–'यजन्ते **श्रद्धयान्विताः**।' जो अन्य देवताओं की भी श्रद्धा से, शुद्ध चित्त से पूजा करते हैं, वे उसी एक प्रभु का पूजन करते है। इस कथन में श्रद्धा को ही मूल उपकरण कहा गया है। जो पत्र, पुष्प, फल या जल ही भगवान् को श्रद्धा पूर्वक अर्पित करते है, भगवान उसी को सहज प्रेम से ग्रहण करते है। भक्ति की कुछ ऐसी ही पद्धति है।

वैदिक मन्त्रों में देवताओं की जो स्तुति है, वह भक्ति का ही आदि रूप है। उपनिषदों में उसका व्यावहारिक रूप प्रारम्भ होता है। श्वेताश्वतरो पनिषद् तथा तैत्तिरीय उपनिषद् मे मानव के सम्पूर्ण आनन्द का आधार ब्रह्म ही प्रतिपादित है। पर इस परमानन्द ब्रह्म को बोधगम्य करने के लिये उसे ईश्वर की संज्ञा दी गयी है। ईश्वर है या नही, इस विवाद का तो एक ही उत्तर है कि जो वस्तु है नही, उसके लिये नहीं शब्द का प्रयोग भी नही हो सकता, क्योंकि जिसका अस्तित्व नही होता, उसका निषेध भी नहीं होता। एस्किमो जाति 'आराम' नाम की वस्तु को जानती ही नही। उसके बर्फ के बीच के जीवन में सतत संघर्ष है। अतएव उसकी भाषा में यह कहा भी नही जा सकता कि 'आराम नही मिलता।'

ईश्वर बोधगम्य है। वह अनुभव से ही जाना जा सकता है। आद्य शंकराचार्य का भी यही मत है कि परमात्मा बुद्धिगम्य नहीं है। जब वे 'नेति–नेति' का प्रयोग करते है तो उसका तात्पर्य यही है कि न यह है, न वह है–तब क्या है, उसे अनुभव से जान लो। महात्मा गाँधी कहा करते थे कि संसार में नित्य ऐसी अनहोनी बातें हो रही हैं, जो सिद्ध करती है कि कोई एक सर्वोपरि सत्ता–शक्ति सबका संचालन कर रही है। अतएव जीवन के प्रतिपल मे ईश्वर की सत्ता सिद्ध होती

है। किन्तु ईश्वर को पहचानना या समझना सरल नहीं है। महाभारत के शान्तिपर्व के नारायणीय धर्म में भक्ति का बड़ा सुन्दर निरूपण हुआ है। जिस पर प्रभु की अपार दया हो जाय, वही उन्हें पहचान सकता है। इसलिये एकाग्रचित्त होकर उस अनिर्वचनीय तत्व का चिन्तन–ध्यान करना चाहिये। किन्तु उनमें प्रवेश उनकी अनन्य भक्ति वाले ही कर पाते हैं। कारण यह है कि साधारण व्यक्ति की भगवान् में चित्त की एकाग्रता शीघ्र नहीं हो पाती। सत्व, रज, तप–गुणों से युक्त, जीव माया के वशीभूत होकर **'यन्त्रारूढानि मायया'**–चरखी में बैठकर मानो चक्कर काट रहा है। इसी माया से बचकर असली तत्व को पहचानने, जानने के लिये भगवान् श्री कृष्ण ने गीता में **'मामेकं शरणं व्रज'**–एकमात्र मेरी शरण में आ जाओ' का उपदेश दिया है पर यहाँ भी मनुष्य का अहंभाव उसे कभी–कभी धोखा दे देता है। शरण का वास्तविक रहस्य न समझकर वह बाह्य साधन पूजा–पाठ की शरण में चला जाता है। पूजा से उठते ही वह माया की शरण पकड़ लेता है। वह सोचता है कि संसार के काम को भक्ति तथा उपासना से जोड़ने से संसार नहीं चलाया जा सकेगा। घर–गृहस्थी भी करनी है। दुकानदारी, नौकरी, लेन–देन इत्यादि में ग्राहक मालिक के सम्बन्धों का निर्वाह करना है। वह सोचता है कि संसार का काम तो पैसे से चलता है, भगवान से क्या मिलेगा ? यही उसकी भूल भगवान से, उनकी भक्ति से उसे अलग कर देती है।

शरणागति का रहस्य

प्रपत्ति अथवा शरणागति की बात तो वैसे सभी करते हैं, पर लोक व्यवहार में यह बात उतरती नहीं दिखती। क्या शरणागत को निष्क्रिय हो जाना चाहिये ? वह (शरण्य) जो चाहे करे, इष्ट जो चाहे वही करे, हम मात्र उसका नाम ही लेते रहें ? महाभारत के अनुसार ईश्वर की कृपा से ही हमें बुद्धि और ज्ञान प्राप्त होता है और हम अपने कर्म–कुकर्म पर पश्चात्ताप भी करते हैं। तब मान लेना चाहिये कि हमारा दोष नहीं है, उस (परमात्मा) ने कृपा नहीं की, हम उसे पहचान न सके, अतएव हम यदि कुकर्म कर रहे हैं तो इसका दायित्व उसी पर है ? किन्तु विचारणीय है कि जब हम स्वयं ईश्वर में विलीन हो जाने की क्षमता रखते हैं तो हमने स्वय अपने को उन से दूर क्यों रखा है ? शाण्डिल्य–सूत्र (३) में छान्दोग्य–उपनिषद् को स्मरण करते हुए कहा गया है कि जो ईश्वर में है, 'तत् संस्थ' है–मन, वचन, कर्म से अपने को उसमें स्थापित कर चुका है, वह परमानन्द को प्राप्त करता है। पर वह हो कैसे ? मानव घर गृहस्थी, वैभव, धन–मान तथा अधिकार आदि में जो आनन्द है, उसे ईश्वर–साक्षात्कार से प्राप्त होने वाले परमानन्द से बहुत कम नहीं मानता है। नारद भक्ति सूत्र (३) में ईश्वर से प्रेम को ही परम सुख की प्राप्ति कहा है। पर क्या पत्नी से प्रेम और ईश्वर से प्रेम में कोई अन्तर है ? उसकी इस प्रकार की भावना बनी हुई है ! यह धारणा बद्धमूल हो चुकी है। परन्तु यह भावना और धारणा सर्वथा असत् है।

राग, विराग, रस, अनुरक्ति–यह सब हमारे स्वभाव में जुड़े हुए हैं। स्त्री या परिवार से सांसारिक सुखों की प्राप्ति हो सकती है, पर कब तक ? न सदैव प्रेमी रहेगा, न प्रेमिका। न अन्त तक परिवार वाले साथ देते हैं, न ये आत्मीय जन। जब हम स्वय अपने रोग, अपनी पीड़ा, अपनी असमर्थता से कराहते हैं तो वे सहानुभूति दिखा सकते हैं, पर कष्ट को बाँट नहीं सकते। यही नहीं, दीर्घकालीन बीमारी या वृद्धावस्था की अक्षमता से निकटस्थजन ऊब भी जाते हैं। तब रागविराग, अनुरक्ति तथा रस–प्रेम और उसकी अजस्रधारा का यदि सच्चा सुख लेना है तो फिर हम प्रभु से

ही प्रेम क्यों न करें ? इसका एक कारण भी है। सांसारिक प्रेम में स्वार्थ प्रविष्ट होता है। आदान-प्रदान की इच्छा सताती रहती है। पर प्रभु-प्रेम में यह बात नहीं है। उसमें तो हम तभी सफल होंगे, जब समस्त इच्छाओं और आकांक्षाओं का निरोध कर उनकी सच्ची भक्ति करेंगे। पर हम नित्य प्रति के पूजा-पाठ में भी प्रभु से कुछ न कुछ माँग करते रहते हैं। इसीलिये वह विशुद्ध प्रेम नहीं हो पाता; वह तो एक प्रकार का सौदा हो जाता है।

संस्कार का फल तो भोगना ही पड़ता है। केवल उपासना से कुसंस्कारों का क्षय होता है। जितना अधिक क्षय होगा, उतनी ही अधिक प्रभु की कृपा प्राप्त होगी। जो नहीं मिला, प्रभु से माँगते हम थक गये; पर फिर भी नहीं मिला। इसमें हमारी नित्य सकाम उपासना की नयी कामनाएँ ही दोषी हैं, जो सकाम उपासना का दुष्परिणाम है। इसमें प्रभु की अकृपा हेतु नहीं है। अतः सब कुछ भगवान् पर छोड़कर उन्हीं के चरणों में अपने को अर्पित कर देने वाला व्यक्ति निष्क्रिय नहीं हो सकता; वह अपने नित्य-प्रति के कर्त्तव्य-कर्मों से भागता नहीं है। जिसने अपने को प्रभु के अर्पित कर दिया है। उसका प्रत्येक कर्म भगवान के लिये होता है। जो आचार-व्यवहार या कर्तव्य-कर्म उसे परिवार, समाज तथा देश के प्रति करने पड़ते हैं, उन्हें प्रभु की आज्ञा या प्रभुसेवा मानकर वह पालन् करने लगता है, अपनी किसी स्वतन्त्र इच्छा से नहीं। इच्छाओं को तो उसने प्रभु के आश्रित कर दिया है। कर्म के फल की उसे कोई चिन्ता नहीं होती। चिन्ता केवल रहती है—प्रभु से उसका सम्पर्क न टूटे, ध्यान न हटे। भक्ति की यही निष्ठा है।

भक्ति की भी दो मुख्य श्रेणियाँ हैं—पहली पराभक्ति है। शाण्डिल्य ने इसे ही एकान्तिक कहा है। प्रभु से बस प्रेम है, केवल उनका प्यार पाने के लिये और कुछ नहीं। नारदजी ने भी इसी का समर्थन किया है यह प्रथम श्रेणी की भक्ति हुई। दूसरी है—सकामोपासना। सकाम-उपासना को यह विश्वास ही नहीं होता कि उसका आराध्य सब कुछ जानता है। पर हमारी क्या स्थिति है, क्या विपत्ति है—इन सबसे वह भली भाँति परिचित है। तब तो उससे कुछ कहने या याचना करने की आवश्यकता ही क्या है ? जो भगवान् को सर्वज्ञ नहीं मानते, न्यायकारी नहीं मानते, वे ही उनसे कुछ न कुछ माँगा करते हैं और माँगकर अपना अज्ञान ही व्यक्त करते हैं। जो पूजा से उठकर पड़ोसी की परेशानी, दुःख तथा पीड़ा से अपने को अछूता समझकर उसमें हाथ नहीं बँटाता या पूजा के बाद लोक कल्याण के कार्य से तटस्थ रहता है, वह नितान्त अभक्त तथा अज्ञानी है; इसलिये कि वह यह मानता ही नहीं कि प्रभु सर्वत्र हैं, सबमें हैं। वस्तुतः सबकी आत्मा एक ही है और सबका सुख-दुख हमारा अपना है। सच्चा भक्त सब में अपने को, अपने प्रभु को, अपनी आत्मा को देखता है और यह तभी सम्भव है, जब उसकी भक्ति निष्काम हो। किन्तु हम वैसी ही भूल कर रहे हैं जैसे हम भगवान् से कहें कि हमारा अमुक प्रतिद्वन्द्वी हमसे पराजित हो जाय और दूसरी ओर हमारे प्रतिद्वन्द्वी के भी ऐसी ही प्रार्थना करते रहने पर समझी जा सकती है। दोनों में से एक की विजय तो होगी ही और जो जीतेगा, वह प्रभु को धन्यवाद देगा तथा जो हारेगा, प्रभु को उलाहना देगा। नृशंस हत्या करने वाले की पत्नी भी मन्दिर में जाकर अपने पति के छुटकारे की प्रार्थना करती है, पर वह अपने पति के संस्कार को नहीं देखती। परमात्मा उसे बुद्धि दे सकते हैं, परिताप सहने तथा पश्चाताप करने की शक्ति भी दे सकते हैं, पर वह अपने

विधानानुसार हत्या जैसे जघन्य पाप-कर्म के फल-भोग में हस्तक्षेप कैसे कर सकते हैं ? अतः उनसे ऐसी माँग मूर्खता है। प्रभु से शुद्ध प्रेम करने से सुबुद्धि आती है, सही मार्ग पर चलने की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। प्रभु-प्रेम के मार्ग पर जो चल पड़ा, समझो कि उस पर परमात्मा की इतनी बड़ी कृपा है, जिसका मूल्यांकन नहीं हो सकता।

प्रभु को समर्पण का स्वारस्य

स्वयं को प्रभु के प्रति समर्पित करने के तीन मुख्य प्रकार हैं—शान्त, दास्य तथा सख्य। शान्त सर्वोपरि है। इसमें केवल आत्मलीन हो जाने के अतिरिक्त साधक को और कुछ चाहना या करना नहीं होता। दास्य-भाव में भक्त अपने को भगवान् का दास मानकर उनकी सेवा में लीन हो जाते हैं। पर अपने इष्ट की सेवा में लीन व्यक्ति यदि अपनी उपासना की एकाग्रता में यह भूल जाय कि बगल के मकान में पीड़ा से कराहते हुए रोगी की दवा लाने वाला कोई नहीं है; अतः उसे दवा लाकर देनी चाहिये। नहीं तो उसकी दासता व्यर्थ है। प्रभु मात्र सेवा उपासना से प्रसन्न नहीं होते। यदि परमात्मतत्व को प्रत्येक जीवात्मा में नहीं देखा तो फिर प्रभु की यह उपासना कैसे ? 'सीय राम मय सब जग जानी' की भावना को भूलकर मनुष्य को प्राप्तव्य कैसे प्राप्त हो सकता है।

भक्ति के तीन भाव और हैं—वात्सल्य, (जैसा प्रेम गाय बछड़े से करती है,) मधुर भाव (जैसा प्रेम गोपिकाओं का श्री कृष्ण के प्रति था) तथा आधिपत्य—प्रभु को अपना अभिभावक मानकर चलना। पर ये सब रजोभाव हैं और इनमें तामसी प्रवृत्ति मिली रहती है। देखने सुनने में अच्छा लगता है, पर ऐसी ऊपरी उपासनाओं में सांसारिक रागी-विरागी ही उलझा रहता है। असली भक्ति 'शान्त' है जिसे गीता में इस रूप से कहा गया है—

'मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु'।

भक्ति जब सत्व, रज तथा तम गुणों को लेकर होती है तो उसे विधि तथा 'मर्यादा—भक्ति' की संज्ञा प्राप्त होती है। पर परमानन्द इन तीनों गुणों से ऊपर है—अस्पृश्य है। परमानन्द परमेश्वर है, हरि है। उड़ीसा के गौड़ीय संत श्रीबलदेव विद्याभूषण ने 'वेदान्त सूत्र का' भाष्य लिखा है। इसके 'गोविन्द भाष्य' में उन्होंने स्पष्ट किया है कि ब्रह्म ही हरि है। इन्हीं हरि की भक्ति करने से भागवत में परम भक्त प्रह्लाद उद्धवादि को भागवतोत्तम की उपाधि दी गयी है। दक्षिण के भगवत्पाद आचार्य शंकर, रामानुजाचार्य, निम्बार्क, बंगाल के महाप्रभु चैतन्य और उनके अनुयायी जीवगोस्वामी तथा अन्य संत—विज्ञानभिक्षु, संत श्रीकर इत्यादि ने अपने उपदेशों और रचनाओं में बार—बार समझाया है कि जीव ही ब्रह्म है। पर इस ब्रह्म को पकड़ में लेना सहज काम नहीं है। उसको प्राप्त करने के लिये प्रभु की अनन्य और निष्काम भक्ति ही एकमात्र साधन है। प्रभु के साथ जीव का प्रेम स्वाभाविक है—अपने से ही अपने को प्रेम होता है। आचार्यों ने विशुद्ध प्रेम की व्याख्या कर दी है। भक्ति **'ऐकान्तिकी', अहैतुकी'** और 'आत्यन्तिकी' होनी चाहिये। निश्छल, निष्काम तथा परम भक्ति ही सार्थक है।

उपासना के जो क्रम निर्धारित हैं, वे केवल उस चरम लक्ष्य तक पहुँचने की सीढ़ियाँ हैं, जिन पर चढ़ते हुए 'आत्मलीन' हो जाने का श्रेय प्राप्त होता है। पर शिखर पर जाने वाला यदि ऊँचाई का अनुमान मात्र करके प्रथम सीढ़ी पर ही खड़ा रह जाय, तो वह फिर ऊपर पहुँच नहीं पायेगा। पूजा—पाठ, उपासना इत्यादि ऐसी ही श्रेणियाँ हैं—प्रथम साधन हैं, साध्य नहीं हैं।

❋ ❋ ❋

योगासन एवं स्वास्थ्य

महाशक्ति कुण्डलिनी गुरुदेव की अनुकम्पा से प्राणायाम से या अन्य हठयोग की विविध साधनाओं से जग जाया करती है। हमारे योगासनों में इस प्रकार के भी आसन सम्मिलित हैं जिनका अनवरत अभ्यास करने से महाशक्ति कुण्डलिनी जग जाती है। और यह जीव सामर्थ्य को पा जाता है। भद्रासन, पश्चिमोत्तान वज्रासन एवं शीर्षासन सभी आसन कुण्डलिनी प्रबोध करने वाले हैं। बहुत से हठाभ्यासी जिनकी राजयोग में विशेष अभिरूचि नहीं है और जिन्होंने अपना लक्ष्य हठयोग ही बनाया है। वे कुण्डलिनी जागरण के लिये हठयोग की ही विशेष साधनाओं में लगे रहते हैं। हमने श्री वृन्दावन में करौली वाली कुञ्ज मे एक ब्रह्मचारी को देखा जो वज्रासन, भद्रासन, शक्ति चालिनी मुद्रा और शीर्षासन इन सभी आसनों को कुण्डलिनी जागरण के लिये कई–कई घण्टों करते रहते थे। हमने उनके दर्शन प्राप्त किये और वार्तालाप में उन्होंने बताया कि यह कई वर्षों से इसी हठ साधना में लगे हुये है और इस विषय में उनका थोड़ा सा कार्य शेष रह गया है जो लगभग २ वर्ष में पूरा हो जायेगा। दो वर्ष बाद हम उनके आश्रम पर गये तो पता चला कि उनके दृढ़ता पूर्वक हठाभ्यास से कुण्डलिनी प्रबोध और उसके फलस्वरूप उनके प्राण ब्रह्माण्ड में चलने लगे और उनकी अनवरत समाधि बनी रहने लगी। उनके साथ रहने वालों ने भी कई चमत्कार देखे। अन्ततः उनको तीव्र वैराग्य हुआ और वे कहीं वनों में चले गये। कहने का अभिप्राय यह है कि योगासनों के जिन लाभों को दृष्टिपथ में रख करके योगाचार्यों ने साधन बताये हैं। वे केवल इसी लोक से सम्बन्ध रखने वाला नहीं प्रत्युत परलोक का दाता भी है।

योगी का आहार

हमारे शास्त्र कहते है आहार शुद्धि होने पर सतोगुण का विकास होता है और सत्वशुद्धि होने से ध्रुवास्मृति प्राप्त होती है। सत्वशुद्धि ही समाधि की दात्री है। जिस प्रकार से आसन प्राणायाम आदि योगानुष्ठान करने से बराबर विवेक ख्याति पर्यन्त ज्ञान दीप्त होती चली जाती है इसी प्रकार जिस साधक का आहार विहार संयमित है उनके शरीर में दिव्य गुणों का प्रकाश हो जाया करता है। जगदात्मा भगवान कृष्ण चन्द्र ने गीता के सत्रहवें अध्याय में सात्विक राजस एवं तामस तीन प्रकार के प्रकृति के लोगों के आहार को बताया है।

❊ ❊ ❊

श्री रामलाल प्रभवे नमः | योग मंदी है मेरा योग से ज्यादा नहीं। योग ज्ञान के बिना कोई मुझे पाया नहीं।। | श्री चन्द्र मोहन गुरुवे नमः रजि. नं. J/136/2000

प्रभु श्री रामलाल संगीत महाविद्यालय

गणेश बाजार, झाँसी

(प्रयाग संगीत समिति इलाहाबाद से सम्बद्ध)

द्वारा आयोजित

सत्ताईसवाँ अखिल भारतीय योग एवं संगीत सम्मेलन

स्थान– पैवेलियन हॉल (श्रीलक्ष्मी व्यायाम मंदिर) झाँसी

दिनांक 28, 29, 30 एवं 31 अक्टूबर 2003

परम करुणा निकेतन विश्व वंदित पल–पल स्मरणीय सद्गुरुदेव भगवान योगिराज अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज (श्री सिद्ध गुफा समाद, अमरा) की असीम कृपा से प्रभु श्री रामलाल संगीत महाविद्यालय, झाँसी द्वारा योग सम्मेलन आयोजित हो रहा है। योग सिद्धान्तों पर प्रवचन, ध्यान एवं समाधि के व्यवहारिक प्रशिक्षण हेतु आचार्य चन्द्रदत्त जी शर्मा (दिल्ली) सहित योग के अनेक लब्धप्रतिष्ठ विद्वान पधार रहे हैं। इस अवसर पर योगाधारित संकीर्तन, एकाग्रता प्रदान करने वाले भजनों के अतिरिक्त शास्त्रीय संगीत प्रतियोगितायें एवं संगीत सम्मेलन भी उपरोक्त तिथियों में आयोजित है।

सभी आदरणीय भाई, बहन, श्रद्धालु, योग जिज्ञासु एवं सर्व प्रेमी महानुभावों से निवेदन है कि कार्यक्रम में इष्ट मित्रों सहित भाग लेकर पुण्य लाभ लें एवं अपने जीवन को योगमय बनायें।

कार्यक्रम

28,29,30,31 अक्टूबर 2003	श्री प्रभुजी की आरती पूजन संकीर्तन	प्रातः 7 से 8:30 बजे तक सायं 7 से 8:30 बजे तक
28,29,30,31 अक्टूबर 2003	योग सिद्धान्तों पर प्रवचन	प्रातः 8.30 से 10.30 बजे तक रात्रि 9.30 से 10.30 बजे तक
28,29, अक्टूबर 2003	बुन्देलखण्ड संगीत प्रतियोगितायें	प्रातः 11 बजे से सायं 5 बजे तक
29 अक्टूबर 2003	पारितोषिक वितरण	सायं 7 बजे
30,31 अक्टूबर 2003	अखिल भारतीय संगीत सम्मेलन	अपराह्न 2.30 से सायं 5 बजे तक
31 अक्टूबर 2003	श्री प्रभुजी एवं गुरुदेव जी का पूजन	दोपहर 12 बजे
31 अक्टूबर 2003	भण्डारा	दोपहर 1 बजे से 2.30 बजे तक

मंगला आरती प्रातः 5 बजे, आसन व्यायाम नैतिशिक्षा प्रातः 6 बजे से 7 बजे तक

आयोजक :
डॉ० श्री हरिमोहन गुप्ता, अध्यक्ष
इंजी. सीताराम गुप्ता, महामंत्री
एवं समस्त सदस्य कार्यकारिणी समिति

पत्र व्यवहार :
93 सिविल लाइन्स, झाँसी
फोन 0517-2330074

संयोजक
कृष्णकान्त झा, प्राचार्य
प्रभु श्री रामलाल संगीत महाविद्यालय
झाँसी

प्रभु श्री रामलाल संगीत महाविद्यालय एवं योग कीर्तन मण्डल, झाँसी

PRINTPOINT (0562) 2262261

Ag: 008 अक्टूबर

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र

सवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री

65, बालाजी पुरम, ... रोड,

... आगरा

...त्ती यच्चकृमा देव्ये जने दीनैर्दक्षैः प्रभूती पुरुषत्वता।
...ु च सवितर्मानुषेषु च त्वं नो अत्र सुवता दनागसः।।

(ऋग्वेद ४/५४/३)

जीवन दिव्य गुणों से भरा हुआ है। हम अज्ञानवश या असावधानी के कारण निष्ठा में प्रमाद कर देते हैं। हमारे दुर्बल पुत्र-पौत्रादि अपराध कर देते भी विशेष अपराधी हो जाते हैं। यही क्यों, हम अपनी चतुराई, या मनुष्यों के प्रति भी अपराध कर देते हैं। आप उन सब प्रकार पापों से मुक्त कर दीजिये। हमारी यही अभ्यर्थना है।

प्रकाशक एवं मुद्रक : विनय गजानन शर्मा द्वारा कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस, ..., ..., आगरा के लिए राष्ट्रीय ब्लाक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, जौहरी बाजार, आगरा से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित।
सम्पादक—आचार्य ब्र.(डा.) रामलाल शर्मा